ओ३म

विश्ववारा नारी

नन्दिता शास्त्री 'चतुर्वेदी'


अखिल भारतीय वैदिक सम्मेलन

ओ३म्

विश्ववारा नारी

लेखिका

नन्दिता शास्त्री 'चतुर्वेदी'

आचार्या – पाणिनि कन्या महाविद्यालय

महमूरगंज, तुलसीपुर वाराणसी-10

मो. 9235539740

E-mail-paninikm@gmail.com

Webside-www.paninikanyagurukul.com



पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग

वाराणसी

विश्ववारा नारी

नन्दिता शास्त्री 'चतुर्वेदी'
आचार्या – पाणिनि कन्या महाविद्यालय
महमूरगंज, तुलसीपुर वाराणसी-10
मो. 9235539740

प्रकाशक
पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग
बी 27/98, ए-8, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी-221010
टेलीफोन – (91-542) 2314060
e-mail:pilgrimspublishingvns@gmail.com
website-www.pilgrimsonlineshop.com
www.pilgrimspublishingvns.in

प्रथम संस्करण – सन् 2016

सम्पादन — वशिष्ठमुनि ओझा
आवरण — क्रिस्टोफर बर्चेट
लेआउट — सुरेश जायसवाल
शब्द संयोजन — अशोक कुमार 'हंसमुख'

ISBN : 978-93-5076-130-4

मुद्रण : भारत

पुरोवाक्

वेद में नारी को अनेकत्र विश्ववारा कहा गया है। स्वयं परमेश्वर के द्वारा नारी को सम्बोधित यह विशेषण मुझे बहुत ही सम्मान के योग्य व गरिमापूर्ण लगता है। एक तरफ नारी का इतना अपमान कि स्त्रीजन्म ही नहीं स्त्रीलिंग को भी लोगों ने अभिशप्त कर दिया। **विवाह वृन्दावन** (1/5) की टीका में लिखा है–

स्त्रीनामानमृतुं विहाय मुनयो माण्डव्यशिष्या जगुः।

अर्थात् जो ऋतु स्त्रीलिङ्गी है जैसे वर्षा और शरद् इनमें विवाह करना अशुभ है क्योंकि ये स्त्रियाँ हैं, यह माण्डव्य मुनि के शिष्यों का आदेश है। और आज विवाह वृन्दावन में उद्धृत "ज्योतिः सार" के इस वचन को सम्पूर्ण भारतीय हिन्दू समाज ने बिना समझे-बूझे, आँख मूँदकर मान लिया है। बड़े-बड़े वैयाकरण, विद्वान्, ज्योतिषी, शंकराचार्य, कवि किसी ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी नारी की निन्दा करने में। उसे पिशाची, सुरा, नागिन, नरक का द्वार क्या-क्या नहीं कहा? जबकि वह समाज, वे पुरुष स्वयं राक्षस हैं, जो नारियों का सम्मान नहीं करते। नारियों का सम्मान पुरुष समाज को मनुष्य ही नहीं देव बना देता है, यह उद्घोष भी इस देश के मनीषी धर्मशास्त्रियों ने ही किया था।

सच तो यह है नारी सृष्टि के आदिकाल से समस्त संसार के द्वारा वरण करने योग्य विश्ववारा रही है और रहेगी भी। क्योंकि उसका बिना वरण, बिना आलम्बन किये कोई भी इस धरती पर तो क्या इस संसार में कदम भी रखने की जुर्रत नहीं कर सकता। यह कथन अतिशयोक्ति नहीं अपितु विधाता की देन है। इसीलिये वेद में नारी को ब्रह्मा तक कहा है।

यह भी सत्य है कि एक विश्ववारा नारी ही विश्ववार पुत्र को जन्म दे सकती है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में कुहू देवी से प्रार्थना की गई है–

कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवां जोहवीमि।
सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद् ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्।।

– अथर्व. 7/49/1

इस मन्त्र में एक पति अपनी पत्नी से कहता है कि तू कुहू है, देवी है, सुहवा है, तू सुकृत को जानती है। इस गृहस्थ यज्ञ में साथ देने के लिये मैं तेरा बार-बार आवाहन करता हूँ कि तू मुझे वीर पराक्रमी प्रशंसित, हर प्रकार से परिवार को राष्ट्र को आगे बढ़ाने वाले विश्ववार रूप पुत्र को मुझे प्रदान कर, क्योंकि हम गृहस्थियों का सबसे उत्तम धन यही है। वस्तुतः जिसने सुसंस्कारी सुशील पुत्र को कमा लिया उसका गृहस्थ आश्रम सफल हो गया जो कि एक नारी ही कर सकती है।

महर्षि देव दयानन्द ने नारियों के विरुद्ध पनप रही सती प्रथा, बालविवाह, वेदाध्ययन के निषेधादि पक्ष को बड़ी गम्भीरता से समझा और अनेक अन्य सामाजिक क्रान्तियों के साथ-साथ इसके विरुद्ध भी एक बहुत बड़ा आन्दोलन **आर्य समाज** के रूप में खड़ा किया जो स्त्रीशिक्षा को, नारी सम्मान को सर्वोच्च एवं सुरक्षित रखे। आज समाज में यदि सुपठित, सुशिक्षित, सुसंस्कृत विदुषी नारियाँ हैं तो यह महर्षि की ही देन है। अस्तु।

इस अवसर पर अपनी विदुषीमणि आचार्या **डॉ. प्रज्ञा देवी जी** का मैं बार-बार स्मरण-नमन-अभिनन्दन करती हूँ जिन्होंने हमें इस लायक बनाया। हमारे अन्दर सत्य बात को कहने का ज्ञान और निर्भीकता दी, जिसे आज समाज स्वीकार भी कर रहा है। इसका **ज्वलन्त उदाहरण** है दो वर्ष पूर्व 23 नवम्बर 2014 से अस्सी घाट पर आयोजित **सुबह-ए-बनारस** कार्यक्रम में प्रतिदिन अपने **पाणिनि कन्या महाविद्यालय** की कन्याओं का जाना वहाँ मन्त्रोच्चारण करना, यज्ञ कराना। **यही नहीं** अखिल भारतीय विद्वत्परिषद् द्वारा काशी की धरती पर एक नारी को (आचार्या पाणिनि कन्या महाविद्यालय नन्दिता शास्त्री को) भरी सभा में **वेदश्री सम्मान** से सम्मानित किया जाना।

यही नहीं, अखिल भारतीय वैदिक सम्मेलन में एक वेद विदुषी के रूप में मुझे काशी के अनेक शंकराचार्य, विद्वान्, वेद विभागाध्यक्षों के मध्य मञ्च पर बोलने के लिये आमन्त्रित किया जाना। **यही नहीं** महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेद विद्या प्रतिष्ठान द्वारा कन्याओं के एक विद्यालय (पाणिनि कन्या महाविद्यालय) को वेद विद्यालय के रूप में स्वीकार किया जाना। **मुझे याद आता है**, जब इसी काशी की धरती पर हमारी आचार्या जी ने **पुरी के शंकराचार्य श्री निरंजन देव तीर्थ** को ललकारा था, जिसे शंकराचार्य जी ने साधारण महिला समझ कर कहा था– बेटी यहीं आ जाओ और इन शब्दों को सुनकर सिंहनी की तरह दहाड़ती हुई हमारी आचार्या (डॉ. प्रज्ञा देवी) जी ने कहा था– **''बेटी तो मैं दयानन्द की हूँ। शंकराचार्य की दृष्टि में तो मैं पाँव की जूती हूँ। आज जूती और शंकराचार्य जी के मध्य शास्त्रार्थ होगा तब पता चलेगा कि पाँव की जूती उछल कर कहाँ पड़ती है।''** इस घटना से पाठक-जन हमारी आचार्या जी के ज्ञान, आत्मविश्वास और निर्भीकता के तेवर को समझ सकते हैं। मुझे अभिमान है कि मैं उन आचार्या जी की अन्तेवासिनी बेटी हूँ।

इससे पूर्व अपनी आचार्या जी का नारियों पर लिखे लेखों का संग्रह **''उरुधारा नारी''** नाम से प्रकाशित हो चुका है जो वैदिक नारी के सम्मान व अधिकार को दर्शाता एक उज्वल दीपस्तम्भ है। उसी परम्परा में जब मेरे नारी विषयक लेखों का संग्रह प्रकाशित करने की बात आई तो बड़े प्रेम से मैंने उरुधारा से मिलता-जुलता **विश्ववारा नारी** नाम मनोनीत किया जिसे हमारे शुभचिन्तकों ने पसन्द किया और आज प्रभु कृपा से वह पुस्तकाकार आपके हाथों में पहुँचने जा रहा है, इसकी मुझे अतिशय प्रसन्नता है।

इस पुस्तक में पाणिनि कन्या महाविद्यालय के मुख पत्र **महर्षि पाणिनि-प्रभा** में मेरे द्वारा लिखित वे महत्वपूर्ण सम्पादकीय भी मैंने समायोजित किये हैं जो नारियों से सम्बन्धित शास्त्रार्थ आदि के वृत्तान्त हैं जिन्हें पढ़कर आप

नारी गौरव से युक्त होंगे। इसी क्रम में उल्लेखनीय है कि 2011 महाराष्ट्र औरंगाबाद में आयोजित **अखिल भारतीय वैदिक सम्मेलन** के अन्तर्गत सनातनी भाइयों द्वारा समायोजित सम्भवतः वह पहला महिला सम्मेलन था, जिसे मैं भूल नहीं सकती, जिसका विषय था– **वेद रक्षा में नारियों का सहभाग,** जिसमें भाई **दयाराम बसैये** जी के परामर्श से मुझे सम्मेलन का अध्यक्ष बनाया गया था।

वहाँ मैंने स्त्रियों के वेदाध्ययन-अधिकार पर सामने बैठे वैदिक भाइयों से कहा था– वेद रक्षा में नारियों का योगदान तो सृष्टि के आदिकाल से रहा है, जब से कि ऋषि इस धरती पर आये, ऋषिकायें भी तभी से आईं और वेद, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष आदि वेदांगों की विदुषी, प्रचारिका हुईं। उस समय लड़कों के समान लड़कियों के भी गुरुकुल होते थे वे भी ब्रह्मचारिणी रहकर वेद पढ़ती पढ़ाती थीं किन्तु आज यदि आप स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं दोगे तो आप सही अर्थों में ब्राह्मण कहलाने योग्य भी नहीं रह पाओगे, वर्णसंकर बन जाओगे। गीता के आरम्भिक प्रसंग में अर्जुन ने यह चिन्ता व्यक्त की थी कि–

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत।
अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्ण संकरः॥

– गीता.1/40-41

अर्थात् इस युद्ध में वीरों के हत होने पर कुल के साथ-साथ कुलधर्म भी नष्ट हो जायेंगे जिससे अधर्म की वृद्धि होगी। और अधर्म के बढ़ने से स्त्रियाँ पवित्र और सुरक्षित नहीं रह पायेंगी जिससे भविष्य में वर्ण संकर का दोष खड़ा हो जायेगा। और आज वही हो रहा है। पुरुष वेद पढ़ता है इसलिये ब्राह्मण है पर यदि स्त्री वेद नहीं पढ़ती तो वह शूद्रा है, अब इन दोनों के

विवाह से उत्पन्न सन्तान भला ब्राह्मण कहाँ? वह तो वर्णसंकर ही कही जायेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसलिये यदि पुरुष ब्राह्मण समाज अपने अस्तित्व की सुरक्षा करना चाहता है तो उसे नारियों को वेद पढ़ने का अधिकार देना होगा। उनका भी उपनयन-वेदारम्भ संस्कार, ब्रह्मचर्य की दीक्षा होती है इसे मानना और पुनः अपनाना होगा, फिर दोनों के गुण-कर्म-स्वभाव-शिक्षा का मिलान कर विवाह करना अनिवार्य करना होगा, तभी हमारा समाज **गायन्ति देवाः किल गीतकानि** देवताओं के निवास वाला होकर विश्ववारा नारी के सहयोग से विश्ववार पुत्रों को जन्म देने वाला बन सकेगा और यह मही पुनः आर्यावर्त्त पद पर प्रतिष्ठित हो सकेगी। नारियों से सम्बन्धित ऐसे अनेक विषय प्रमाण सहित विस्तार से आप इस पुस्तक के अन्दर पढ़ेंगे। अस्तु।

इसकी प्ररोचना लिखने के लिये मैंने सम्मान्या ओजस्विनी-तेजस्विनी वागीश्वरी वाणी की धनी विदुषी बहिन **डॉ. शशिप्रभा कुमार** कुलपति– साँची बौद्ध विश्वविद्यालय भोपाल से निवेदन किया, उन्होंने इसे प्रेम पूर्वक सहर्ष स्वीकार करते हुए प्ररोचना के रूप में अपने उद्गार व्यक्त किये, तदर्थ मैं उनकी अत्यन्त आभारी हूँ।

एक बार पुनः सभी उन पाठकों का हार्दिक धन्यवाद करती हूँ जिन्होंने समय-समय पर मुझे इन विषयों पर कुछ लिखने, अवगाहन करने के लिये प्रेरित किया।

वेदमनुव्रता
नन्दिता शास्त्री 'चतुर्वेदी'
आचार्या– पाणिनि कन्या महाविद्यालय,
वाराणसी- 10 (उ.प्र.)
मो0- 9235539740

प्ररोचना

डॉ. नन्दिता शास्त्री जी की पुस्तक "**विश्ववारा नारी**" पर दृष्टिपात करने का अवसर मिला, अत्यन्त आह्लाद हुआ कि उन्होंने न केवल अपने ऋषि-ऋण से उऋण होने का स्तुत्य प्रयास किया है, अपितु वर्तमान युग की तथाकथित नारी-स्वातन्त्र्यवादी एवं पुरातनपन्थी, पुरुषप्रधानवादी सामाजिक-धार्मिक विचारधाराओं का खोखलापन भी उजागर किया है। आधुनिक युग के महान् मानवतावादी, वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों के आधार पर पुरुषों से स्त्रियों की समानता एवं सशक्तता का जो बिगुल बजाया, उसके फलस्वरूप नारी-शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ, अनेक कन्या गुरुकुलों की स्थापना उसी का सुखद परिणाम है। पाणिनि कन्या महाविद्यालय, वाराणसी इसी दिशा में आरम्भ किया गया एक ऐतिहासिक संस्थान है जहाँ स्वर्गीया **आचार्या प्रज्ञादेवी** और **मेधादेवी** जैसी विदुषी देवियों के संरक्षण-मार्गदर्शन में अनेक कन्यायें सुशिक्षित हुईं जो आज समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान कर रही हैं। **डॉ. नन्दिता शास्त्री** उसी परम्परा में दीक्षित विदुषी आचार्या हैं जो अपनी शिष्याओं को पढ़ाती हुई, गुरुकुल का प्रबन्धन-प्रशासन भी देखती हैं और यत्र-तत्र सामाजिक कार्यक्रमों में सहभागिता के माध्यम से वैदिक सन्देशों का प्रचार-प्रसार भी करती हैं।

"**विश्ववारा नारी**" नामक प्रस्तुत पुस्तक में नन्दिता जी के उन लेखों का संकलन है जो मुख्यतः नारी-व्यक्तित्व के विविध आयामों से सम्बद्ध हैं। तद्यथा– वेदों में नारी, महिलायें और कर्मकाण्ड, वेदों में नारी के वित्तीय अधिकार, वेदों में महिलाओं के धार्मिक अधिकार, वेदों में नारी-उषा के झरोखे से, कन्या विश्वरूपा, नवरात्र में ग़ौरी-पूजन इत्यादि। इन लेखों में उनकी यही मान्यता मुखर होती है कि वैदिक वाङ्मय में नारी का जो उदात्त

एवं भव्य रूप चित्रित किया गया है, वह आज भी प्रासंगिक तथा प्रेरणाप्रद है। उदाहरणार्थ– नवरात्र में गौरी-पूजन आज एक धार्मिक प्रथा अवश्य है, किन्तु उससे वर्तमान समाज को कोई नई दिशा नहीं मिलती। इस दृष्टि से वैदिक व्याख्या को एक नूतन व्यावहारिक आयाम तक पहुँचाने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती की भाष्य-प्रणाली के आलोक में देखने पर ज्ञात होता है कि 'गौ' शब्द वैदिक कोश निघण्टु में वाणी के नामों में परिगणित है। तदनुसार जो सुसंस्कृत वेदवाणी में रमण करे, उस विदुषी स्त्री अथवा कन्या का नाम है गौरी– **या गवि सुशिक्षितायां वाचि रमते सा गौरी।**

अतः जब तक स्त्रियों को वेदाध्ययन में पुरुषों के समान अधिकार नहीं दिया जायेगा, तब तक नवरात्र में गौरी-पूजन वस्तुतः सार्थक नहीं हो सकता। इसी भाँति विश्ववारा, सुभगा, अनुमति, सुप्रणीति एवं अदिति आदि पदों की व्याख्या करते हुए नन्दिता जी ने यह सप्रमाण स्थापित किया है कि वेदों में नारी को सर्वथा पुरुषों के समान अधिकार दिये गये हैं, उन्हें न केवल उपनयन आदि सभी सोलह संस्कारों की पात्रता, अपितु पौरोहित्य की पदवी भी स्वयं वेद में ही दी गई है–

स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।

इसी भाँति वैदिकी देवी 'उषा' के माध्यम से विदुषी लेखिका ने वेदों में नारी के गरिमापूर्ण स्थान को स्पष्ट किया है। वैदिक वाङ्मय में स्त्री का एक वाचक शब्द है– 'योषा' जिसकी निष्पत्ति सामान्यतः यु मिश्रणे धातु से की जाती है। तदनुसार इसका अर्थ होता है– जो स्वयं को पुरुष के साथ जोड़ लेती है तथा परिवार को एवं समाज को जोड़ती है। किन्तु नन्दिता जी ने 'योषा' पद का विच्छेद 'या+उषा' के रूप में करके इसकी एक नूतन छवि प्रस्तुत की है। उन्होंने इस विषय में वेद के और वेदभाष्यकार महर्षि दयानन्द के वाक्य प्रमाण रूप में दिए हैं तथा वैदिकी नारी को 'प्रातः समय की वेला सी अलबेली स्त्री' के रूप में विचित्र किया है। साथ ही, उषा के लिए वेद

में प्रयुक्त विभिन्न पदों की सूची भी दी है जो कन्या के नामकरण हेतु उपयोगी रहेगी।

प्रस्तुत पुस्तक में **'महिलायें और कर्मकाण्ड'** विषय पर भी चर्चा की गई है तथा विदुषी लेखिका ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि एकाधिक स्थलों पर उनका कई पौराणिक बन्धुओं से इस विषय में शास्त्रार्थ भी हो चुका है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वैदिक विचारधारा में धर्म-कर्म का कोई भी क्षेत्र नारी से वंचित नहीं तथा आज सत्य, सनातन, वैदिक धर्म की शिक्षाओं से अनभिज्ञ जन ही स्त्रियों को धार्मिक कृत्यों से बहिष्कृत करने का दम्भ दिखाते हैं। अतः आधुनिक युग में नारियों के उत्थान में महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज का महनीय योगदान है– इसी तथ्य को सम्पुष्ट करती नन्दिता शास्त्री जी की यह पुस्तिका सर्वथा स्वागतार्ह है। इसका अधिकाधिक प्रचार हो, इसी मंगलकामना के साथ मैं विदुषी लेखिका को भूरिशः साधुवाद देती हूँ, प्रभु से प्रार्थना है कि उनकी वाणी एवं लेखनी को और अधिक सामर्थ्य प्रदान करें।

– प्रो. डॉ. शशिप्रभा कुमार "कुलपति"
साँची बौद्ध- भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय
भोपाल (मध्यप्रदेश)

विषय-सूची

धर्म-कर्म का कोई भी क्षेत्र नारी से वञ्चित नहीं!

एक युग था, सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर करोड़ों वर्ष तक का– जिसे महर्षि दयानन्द ने ब्रह्मा से लेकर मीमांसा सूत्रकार जैमिनि मुनि पर्यन्त कहा है अर्थात् महाभारत युद्ध के लगभग ढाई हजार वर्ष के बाद तक का वह काल जिसे वेद से लेकर उपनिषद् तक भी हम कह सकते हैं– उस युग में स्त्रियों को राष्ट्र का आधार वेद के शब्दों में **'पुरन्धिर्योषा'**[1] माना जाता था क्योंकि उत्तम सन्तान के निर्माण का दायित्व पूर्णतः माता के ऊपर ही था।

शतपथ ब्राह्मण का 14वाँ काण्ड जो कि बृहदारण्यकोपनिषद् के नाम से भी जाना जाता है उसके अन्तिम अध्याय में **'अथ वंशः'** लिखकर माताओं के नाम से ऋषिपुत्रों की जिस सुदीर्घ वंश परम्परा का क्रमशः पौतिमाषी पुत्र कात्यायनी पुत्र से, कात्यायनी पुत्र, गौतमीपुत्र से गौतमीपुत्र, भारद्वाजी पुत्र से, भारद्वाजी पुत्र, पाराशरी पुत्र से पाराशरी पुत्र, औपस्वती पुत्र से औपस्वती पुत्र........ आदि चालीस-पचास तक की पीढ़ी का उल्लेख प्राप्त होता है। यह इस बात को ज्ञापित करता है कि उपनिषद् युग तक नारियों की, माताओं की समाज और राष्ट्र के निर्माण में कैसी प्रतिष्ठा थी। इस उपनिषद् पर भाष्य करते हुये श्री शंकराचार्य जी लिखते हैं–

अथेदानीं समस्तप्रवचनवंशः। स्त्रीप्राधान्यात्। गुणवान्पुत्रो भवतीति प्रस्तुतम्। अतः स्त्री विशेषणेनैव पुत्रविशेषणादाचार्यपरम्परा कीर्त्यते।[2]

अर्थात् अब यहाँ से समस्त आरण्यक (जङ्गलों में किये गये) प्रवचनों की वंशपरम्परा का आरम्भ होता है। सन्तान के निर्माण में स्त्रियों की प्रधानता होने

---

1. यजु. 22/22
2. बृ.उ. 6/4/30-33

से उनके कारण ही पुत्र गुणवान् होते हैं इसलिए स्त्री विशेषण से ही पुत्रों को विशेषित करके आचार्य परम्परा का कीर्त्तन महर्षि याज्ञवल्क्य ने यहाँ किया है लिखा है। पाठको! ये वही शंकराचार्य हैं जो इसी उपनिषद् के इसी प्रकरण में कहते हैं–

'अथ य इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत' अर्थात् जो चाहता है मेरी बेटी पण्डिता बन जाये तथा पूरी आयु भोगे वह तिल तथा चावल पकाकर घी डालकर खाये। इसका भाष्य करते हुए कहते हैं–

'दुहितुः पाण्डित्यं गृहतन्त्रविषयमेव' वेदेऽनधिकारात्।[1]

अर्थात् दुहिता का पाण्डित्य गृहकार्य विषयक ही है, वेद में अधिकार न होने से यह लिखते हैं। तात्पर्य हुआ, दुहिता का पाण्डित्य इनके गले नहीं उतरा। वस्तुतः शंकराचार्य जी जैसे स्त्रियों के वेदाध्ययन विरोधी अहंमन्य लोगों के कुटिल प्रयास का ही यह दुष्परिणाम था कि महर्षि के आगमन से पूर्व हमारा राष्ट्र विकलाङ्गता की स्थिति में पहुँच चुका था। लोगों ने खुले आम **स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतिः** कहना आरम्भ कर दिया था।

आज स्त्री-शिक्षा की बात करते हुये आर्यसमाज के उन आरम्भिक प्रयासों को विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिनमें किसी प्रकार अनेक प्रलोभन देकर भी कन्याओं को पाठशाला तक खींचकर लाना बहुत दुष्कर कार्य होता था। पूरा-पूरा दिन घूम-घूमकर लोगों को समझा-बुझाकर दो कन्यायें पढ़ने के लिए किसी प्रकार आती भी थीं तो दिन भर में कोई न कोई उनका सगा सम्बन्धी उनको वापिस पकड़कर घर ले आता था, यह कहकर कि कहीं लड़कियाँ भी पढ़ती हैं? यदि इनको पढ़ाया गया तो इनका चरित्र भ्रष्ट हो जायेगा, इनसे कुल कलङ्कित हो जायेगा, ये शीघ्र विधवा हो जायेंगी आदि आदि। ये बातें उस समय लोगों के हृदय में बहुत गहरे तक बैठी हुई

---

1. बृ.उ. 6/4/17

थीं, जिससे स्त्रियाँ भयभीत थीं। स्त्री-शिक्षा विषयक आर्यसमाज के इतिहास का वह खण्ड द्रष्टव्य है।

महर्षि ने जनसामान्य ही नहीं धुरन्धर पण्डितों तक की इस पक्षपातपूर्ण विचारधारा का खण्डन परमात्मा की वाणी वेद को आधार बनाकर किया था वेद कहता है–

हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि।[1]

अर्थात् मैं ऐसी अदिति नारी का आह्वान करता हूँ जो शूरपुत्रों को जन्म देने वाली हो जिससे कि इस राष्ट्र का नायक राजा अपने सजात = सहजात वयस्क लोगों में सर्वश्रेष्ठ मध्यस्थ बन सके। यदि नारियाँ अशिक्षित, वेदज्ञान से शून्य होंगी तो वे वेद की इस आज्ञा का पालन नहीं कर सकती हैं। इसलिए नारियों का विद्या, सुशिक्षा से युक्त होना अत्यन्त आवश्यक है। ये शब्द भावार्थ के रूप में लगभग प्रत्येक मन्त्र के अन्त में महर्षि के वेदभाष्य में देखा जा सकता है।

महर्षि यास्क यहाँ अदिति शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखते हैं– **'अदितिः अदीना देव माता'**[2] अर्थात् अदिति वह माता है जो दीनता को प्राप्त होकर कभी विखण्डित नहीं होती तथा वह देवों की भी माता उनका भी निर्माण करने वाली है। यही नहीं, ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के ही एक अन्य मन्त्र में नारी से प्रार्थना की गई है कि तू भगवती, भग वाली हो जा! ज्ञान-बल-धन-वैराग्य-ऐश्वर्य आदि की स्वामिनी बन जा[3]—

सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम।[4]

---

1. अथर्व. 3/8/2
2. निरु. 4/4/1
3. भग शब्द के छः अर्थ इस श्लोक में गिनाये हैं–
   ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
   ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।
4. अथर्व. 7/73/11

जिससे कि हम भगवान् बन सकें। हमारी भगवत्ता तेरे अधीन है। तू भगवती होगी तो हम भगवान् बन सकेंगे। वेद के एक मन्त्र में 'विदुषी नारियाँ यज्ञ को प्राप्त कराती हैं', यह कहा है।

उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम्।[1]

इस मन्त्र में कहा है जिस प्रकार दो विदुषी नारियाँ जैसे सास-बहू, माँ-बेटी अथवा आचार्या-अन्तेवासिनी आदि कोई भी हो सकती हैं। वे मिलकर **मर्त्याय** मनुष्यों के लिए **विश्वं यज्ञम्** हर प्रकार के यज्ञ को **किल** निश्चय से **आवहतः** प्राप्त कराती हैं (वह प्रापणे) तद्वत् **उषासानक्ता** उषा तथा नक्ता (रात्रि) ये दोनों मिलकर रात्रि के अन्तिम प्रहर में सब मनुष्यों के कल्याण के लिए ज्ञानयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ आदि का आवाहन करती हैं। इसी प्रकार–

शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती।
इडा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः॥[2]

इस मन्त्र में भी इडा, सरस्वती, भारती पद को प्राप्त नारियाँ इस यज्ञवेदी पर आकर बैठें क्योंकि वे **शुचिः** शुद्ध हैं तथा **देवेषु** विद्वानों के मध्य अथवा देवयज्ञादि कर्म में **अर्पिता** समर्पित हैं तथा **होत्रा** होतृ कर्म के द्वारा **मरुत्सु** मरणधर्मा मनुष्यों के बीच प्रतिष्ठित हैं। ऐसी भारती, इडा, सरस्वती आदि **मही** पूज्य नारियाँ **यज्ञियाः** यज्ञ कर्म करने तथा कराने में अधिकृत हैं। वे इस **बर्हिः** यज्ञवेदी पर अथवा कुशासन पर **सीदन्तु** आकर बैठें।

इन अनेक वैदिक प्रमाणों के रहते हुए आज भी जब-तब नारियाँ यज्ञ नहीं कर सकतीं, वे ब्रह्मा नहीं बन सकतीं आदि विषय उठाये जाते हैं तो बड़ा कष्ट होता है।

---

1. ऋ. 5/41/7
2. ऋ. 1/142/9

इडा, सरस्वती, भारती इन तीन देवियों के विषय में मैं यहाँ कुछ कहना चाहती हूँ कि जिस प्रकार छान्दोग्योपनिषद् में 25 वर्ष के ब्रह्मचारी को वसु तथा 44 वर्ष के ब्रह्मचारी को रुद्र तथा 48 वर्ष के ब्रह्मचारी को आदित्य कहा है उसी प्रकार इडा सरस्वती भारती भी क्रमशः 25, 44, 48 वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करने वाली ब्रह्मचारिणियों की संज्ञायें हैं। यह विचारधारा यजुर्वेद के निम्न मंत्र से मुझे प्राप्त हुई जिसे पाठकों के लाभार्थ मैं यहाँ लिख रही हूँ। मन्त्र है–

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञं सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत्।
इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त॥[1]

इस मन्त्र में कहा है– **आदित्यैः** आदित्य ब्रह्मचारियों के साथ **भारती देवीः** भारती पदवीधारिणी देवियाँ तथा **रुद्रैः सह** रुद्र ब्रह्मचारियों के साथ **सरस्वती देवीः** सरस्वती पद को प्राप्त देवियाँ **नः यज्ञं** हमारे इस ज्ञान यज्ञ को, राष्ट्रयज्ञ को अथवा गृहस्थ यज्ञ को **वष्टु** चाहें तथा इस यज्ञ की **आवीत्** रक्षा करें। इसी प्रकार **वसुभिः सजोषाः** वसु ब्रह्मचारियों के साथ समान प्रीति रखने वाली **इड़ा, उपहूता देवीः** इडा इस नाम से उपहूत पुकारी गई देवियाँ **नः यज्ञम्** हमारे यज्ञ को **अमृतेषु** अमृतलोक की ऊँचाईयों में **धत्त** स्थापित करें। मन्त्र का यह अर्थ मैं नहीं समझती कि किसी के लिए आपत्ति का कारण होगा। छान्दोग्य उपनिषद् का वसु आदित्य ब्रह्मचारी विषयक वह वर्णन मेरी दृष्टि में अपूर्ण है, विकल है। महर्षि ने वेदारम्भ संस्कार में इस प्रकरण को उद्धृत करते हुए कोई पूर्ण विराम नहीं लगाया है कि बालक ही ब्रह्मचारी हो सकते हैं। वेदमन्त्र का यह अर्थ महर्षि के मन्तव्य के विरुद्ध हो, यह कभी हो ही नहीं सकता।

---

1. यजु. 29/8

इस प्रकार इडा, सरस्वती, भारती इन तीन देवियों का त्रिविध ब्रह्मचारिणी के रूप में उल्लेख मानने पर वेद के अध्येताओं को वेद के अनेक मन्त्रों में जहाँ इन तीनों देवियों का एक साथ उल्लेख प्राप्त होता है वहाँ उनमें एक नवीन दृष्टि, नई सूझ प्राप्त होगी। वैदिक काल में वेदानुमोदनपूर्वक नारियाँ पूर्ण ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन करती थीं, कर सकती हैं, यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण होगा। अस्तु।

अधिकार प्राप्त करना कठिन नहीं है। किन्तु कर्त्तव्य का पालन बहुत कठिन है। आज समाज किस प्रकार दिग्भ्रमित है, नारियाँ किस प्रकार पुरुषों की होड़ में अनेकानेक उच्च पदों को प्राप्त कर नित नये कीर्तिमान् बना रही हैं, वह संरचनात्मक न होकर प्रतिहिंसात्मक अधिक है। वे अपने राष्ट्र निर्माण रूपी मूलभूत उद्देश्य से भटक गई हैं। कारण, स्त्री-शिक्षा की इस मुहिम को अनेक ऐसे संघटनों ने अपनाया जो वैदिक विचारधारा से शून्य अंग्रेजी शिक्षापरस्त थे। उनके दिलो-दिमाग में वही योरोप की बहू-बेटियाँ छाई हुई थीं जिससे वे उन्हीं की भाषा भूषा में रंग कर 'हम किसी से कम नहीं हैं' की तर्ज पर स्वयं को ढाल कर अपनी वास्तविक पहचान खोती जा रही हैं यह अत्यन्त दुःखद है। यह भी एक विचारणीय विषय है जिसे इस प्रकार के महासम्मेलनों में स्थान मिलना ही चाहिये।

***

अन्तर्राष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन 2009 मथुरा
की ''ऋषि मिलन'' स्मारिका में प्रकाशित

वेदों में नारी

ओ३म् अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।।[1]

यह ऋग्वेद का मन्त्र है। इस मन्त्र में **अम्बितमे** अर्थात् माताओं में सर्वश्रेष्ठ, **नदीतमे** नदी के समान सतत प्रवहमान, सहज, अव्यक्त ज्ञान-गुण बल सम्पन्न **देवितमे** दिव्यस्वरूपा सरस्वती विदुषी नारी से प्रार्थना की गई है, हे **अम्ब!** अम्बा कहते हैं संस्कृत में माता को अर्थात् हे मातः! **अप्रशस्ता इव स्मसि** हम अप्रशस्त के समान अर्थात् अप्रशस्त ही हैं अतः **प्रशस्तिं नः कृधि** हमें प्रशंसनीय बना दो क्योंकि तुम्हीं इस योग्य हो।

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योते अदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्।।[2]

इस मन्त्र में नारी को ग्यारह नामों से सम्बोधित किया है। वह **इडा** सबके द्वारा स्तवनीय **रन्ता** रमण करने योग्य **हव्या** स्वीकार करने योग्य **काम्या** कामना करने के योग्य **चन्द्रा** आह्लादक गुण विशिष्ट **ज्योति** प्रकाशमान ज्योतिःस्वरूपा **अदिति** अखण्डनीय आत्मिक बल व अखण्डित धर्म-कर्म का पालन करने वाली **सरस्वती** ज्ञानसम्पन्न **मही** पूजनीय **विश्रुति** विस्तीर्ण यश वाली **अघ्न्या** अर्थात् अहन्तव्या न मारने योग्य है। वेद में 'अघ्न्या' यह विशेषण केवल दो के लिये ही प्रयुक्त हुआ है या तो गौ अथवा नारी दोनों ही इस राष्ट्र में समाज में सबके लिये समान रूप से स्वभावतः ममतामयी परोपकारिणी प्रत्युपकार की, बिना अपेक्षा किये परोपकार में प्रवृत्त मानी गई हैं। यहाँ सभी शब्द सम्बोधन में प्रयुक्त हैं। यजुर्वेद के इस मन्त्र में इन गुणों

---

1. ऋ. 2/41/16
2. यजु. 8/43

से युक्त नारी से प्रार्थना की गई है कि तू **देवेभ्यः** इन सभी नामानुरूप दिव्यताओं की प्राप्ति के लिये हमें **'सुकृतं बूतात्'** सुकृत का, सत्कर्म का उपदेश कर। वेद के एक अन्य मन्त्र में भी–

सूयवसाद् भगवती हि भूयाः अधा वयं भगवन्तः स्याम।[1]

अर्थात् ऐ नारी! तू भगवती भग से युक्त हो जा जिससे कि **वयं भगवन्तः स्याम** हम सब भगवान् बन जाएँ। भग कहते हैं हर प्रकार के ऐश्वर्य को धर्म को यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य को। श्लोक है–

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।

इस प्रकार ऐ नारी! तू समग्र ऐश्वर्य से युक्त, धर्माचारिणी, यशस्विनी, लक्ष्मी स्वरूपा, विदुषी, मोक्षगामिनी होकर भगवती बन जा जिससे कि हम भी भगवान् अर्थात् इन गुणों से युक्त हो सकें। समाज में निर्माण का पहला दायित्व वस्तुतः माता का है। माता कहते ही हैं निर्माता को। निर्माता जिन गुणों से भावों से युक्त होगा उसका प्रभाव निश्चित रूप से उस निर्मित्त वस्तु पर पड़ेगा इसलिये नारी जाति से इस प्रकार की अपेक्षा की गई है। वेद के एक अन्य मन्त्र में–

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे।।[2]

उसे देवों की माता **विश्ववारा** सब के द्वारा वरण करने योग्य **प्रशस्ति कृत्** प्रशंसनीय गुणों की जननी **यज्ञस्य केतुः** यज्ञादि धार्मिक कार्यों की केतु अर्थात् पताका उसकी तरह अग्रगण्य सर्वमान्य बताया है। एक अन्य मन्त्र में वह स्वयं कहती है–

मम पुत्रा शत्रुहणः अथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।।[3]

---

1. अथर्व. 7/73/11, ऋ. 1/164/40
2. ऋ. 1/113/19
3. ऋ. 10/159/3

अर्थात् मेरे पुत्र शत्रुओं का विनाश करने वाले बलवीर्य सम्पन्न हैं। ये शत्रु आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के हो सकते हैं। बाह्य आतंकवाद आदि राष्ट्रविघातक प्रवृत्तियों पर जहाँ हमें विजय करनी है वहीं आन्तरिक काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादि पर भी विजय प्राप्त करनी है, अतः सन्तान का शत्रुहन्ता होना आवश्यक है तथा मेरी दुहिता अर्थात् बेटी विराट्, विविध गुणों से सुशोभित है तथा मैं स्वयं परिवार के सास-ससुर, ननद, देवर आदि इकाइयों के प्रति उनके हृदय को भली-भाँति जीतने वाली हूँ तथा पति के हृदय में मेरे प्रति **उत्तमः श्लोकः** उत्तम प्रशंसा का, सम्मान का भाव रहता है, यह कहा है। वेद के अन्य मन्त्र में अपना दुग्धपान कराती हुई नारी–

यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन्।[1]

अपने कुमार बालक को, सन्तान को अपने ही संरक्षण में रखती हुई **कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्त्ति न ददाति पित्रे**[2], उसे पिता को नहीं देती है यह कहा है। अथर्ववेद में–

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमवसर्पन्तु शुभ्राः।[3]

अर्थात् **इमाः शुभ्राः योषितः** ये शोभायमान स्त्रियाँ **शुद्धाः पूताः** तन-मन से पवित्र होती हुई **यज्ञियाः** यज्ञ कर्म के योग्य होती हैं। ये यज्ञिय **आपः** जल चरु आदि हव्य पदार्थों को प्राप्त करती हैं कहा है। इतना सब होते हुए भी नारियाँ समाज में प्रदर्शनप्रिय अहंकार से युक्त उन्मुक्त न बनकर स्त्रियोचित सौम्यता शीलता आदि गुणों से युक्त पूर्ण गरिमामय ढंग से रहें यह भी कहा है–

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥[4]

---

1. यजु. 19/11
2. ऋ. 5/2/1
3. अथर्व. 11/1/17
4. ऋ. 8/33/19

अर्थात् हे नारि! तू **अधः पश्यस्व** नीचे देख **मा उपरि** ऊपर देखती हुई चंचल बनी मत घूम। **सन्तरां पादकौ हर** अपने दोनों पैरों को जोड़कर रख पुरुषों की तरह टांगें फैला कर मत खड़ी हो। **मा ते कशप्लकौ**[1] **दृशन्** तेरे

---

1. वैदिक सार्वदेशिक के सितम्बर अङ्क में श्री वेदव्रत शास्त्री जी सम्पादक 'सर्वहितकारी' दयानन्द मठ, रोहतक, हरियाणा ने वेद के इस मन्त्र पर प्रश्न किया था कि मन्त्र में कशप्लकौ शब्द का क्या अर्थ है? यहाँ कश और प्लक ये शरीर के कौन से अंग हैं जिनको वेद में आच्छादित करने के लिए कहा है? इस प्रश्न के उत्तर में मैंने लिखा था–

कश शब्द **कशतिः आहननकर्मा**– सायणः, कश धातु आहनन अर्थ में स्वीकृत है। इसके अनुसार जो मनुष्य को आहत कर देता है उसका नाम है कश। युवा होती हुई कन्या की पहचान इन्हीं अंगों से होती है जो कि किसी भी युवक को आहत करने के लिये पर्याप्त है। रसिक व साहित्यिक जन इस विषय को समझ सकते हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि भी स्त्री का लक्षण यही करते हैं– स्तनकेशवती स्त्री स्याल्लोमशः पुरुषः स्मृतः। (महा. 4/1/3) स्त्री की पहचान स्तन तथा केश से होती है तथा पुरुष लोमवान् कहा जाता है। प्लक का अर्थ है प्रकट होना। प्रचरः प्रचः प्लकः। प्र पूर्वक चर धातु से ड = प्रच। **रलयोरभेदः** यह व्याकरण का सामान्य नियम है, इससे र ल में कोई भेद नहीं माना जाता है इसलिये प्रच को प्लच भी कह सकते हैं। पुनः **न्यङ्क्वादीनां च** (अष्टा. 6/3/53) इस पाणिनीय सूत्र से च को कुत्व करके प्लक शब्द सिद्ध होगा। कशौ च तौ प्लकौ च इति कशप्लकौ– कर्मधारयः। जो कश हैं वही प्लक हैं। वे दोनों स्तनभूत अंग जो पुरुषों को आहत करते हैं तथा जो स्त्री शरीर में प्रकट होकर उसकी पहचान बनते हैं उन्हें यहाँ कशप्लकौ कहा गया है। आज समाज में जिस प्रकार नंगा नाच हो रहा है, जिस प्रकार नारियाँ स्वयं को विज्ञापित कर रही हैं अथवा उन्हें विज्ञापित किया जा रहा है, यह मर्यादाविहीन है, अवैदिक है, परमेश्वर की आज्ञा के प्रतिकूल है। यही कहा जा सकता है।

पाठक! विचार करें। ऐसा उपदेश जो एक माता अपनी बेटी को देती है, दे सकती है वह परमेश्वर ने इस मन्त्र के माध्यम से दिया है, क्या वह पुरुषों के लिये है? विचारणीय है। इसी के साथ वेद न केवल यज्ञ और कर्मकाण्ड के लिये हैं, न ही वे बहुत ऊँची विद्या, ज्ञान-विज्ञान के ही प्रतिपादक हैं अपितु हमारे जीवन के बहुत करीब हैं, हमारी हर घरेलू समस्या के समाधान कर्त्ता हैं, अत्यन्त व्यावहारिक हैं यह भी सिद्ध होता है। इसीलिये मनु महाराज ने आदेश दिया था– **वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्। अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्॥** (मनु. 3/2) अर्थात् चारों वेदों को नहीं, तो कम से कम दो वेद या एक वेद को पढ़कर ही कोई भी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकारी है। वेद पढ़ने के लिये ब्रह्मचर्याश्रम का पालन अति आवश्यक है। विवाह न करने का नाम ही ब्रह्मचारी नहीं है। ब्रह्म अर्थात् वेद और परमेश्वर को जानना और उसके लिये पुरुषार्थ और तप करना ही ब्रह्मचर्य का उद्देश्य है।

आज समाज के साथ मिलकर चलने की होड़ में हमारे आर्य परिवारों में भी जिस प्रकार कन्यायें पुत्रवधुएँ शरीर के उभार को प्रदर्शित करने वाले तंग कपड़े पहनती हैं वह शर्मनाक है, चिन्तनीय है।

गोपनीय आच्छादनीय अंग सर्वदा आच्छादित रहें। तू सब के लिये प्रदर्शन की वस्तु मत बन, तेरा स्थान सबसे ऊँचा है, **स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ** तू ब्रह्मा है, सृष्टि का आधार है, तू चारों वेदों की ज्ञाता है। क्योंकि यह वेद का ज्ञान मैंने सम्पूर्ण प्राणिमात्र के लिये दिया है।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।[1]

अर्थात् यह कल्याणी वाणी जो कि सबका कल्याण करने वाली है, सबको एक दूसरे के कल्याण में प्रवृत्त रखती है, वह वेदवाणी मैंने **जनेभ्यः** अर्थात् सबके लिये दिया है। मन्त्र में जन शब्द का प्रयोग किया है इसीलिये किसी वर्गविशेष, जातिविशेष या देशविशेष के लिये यह ज्ञान नहीं अपितु मनुष्य मात्र के लिये है, यह सिद्ध होता है।

वे नारियाँ जो कभी किसी प्रकार परिवार की दृष्टि बचाकर छुप-छुप कर अन्धेरी कोठरी में अक्षराभ्यास तक के लिए तरसती थीं और किसी प्रकार स्वयं प्रयत्नशील होने पर स्वयं नारियों के द्वारा ही कुलक्षणी, कुलटा आदि शब्दों से तिरस्कृत व प्रताड़ित होती थीं। बस– "ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताडन के अधिकारी" आदि वचन ही जहाँ आदर्श तथा ऋषि वचन माने जाते थे। नारियों को "असूर्यम्पश्या" कहकर शास्त्रों की लीपा-पोती कर जिन्हें विद्वानों ने घर में ही कैद कर दिया था जहाँ न ज्ञान की किरण थी न ही सूर्य की किरण का कोई अता-पता था। ऐसी स्थिति में महर्षि की ललकार को सुनकर जहाँ नारियाँ अंगड़ाई ले उठ खड़ी हुईं और आज स्वयं अपने ही परिश्रम लगन व कर्त्तव्य निष्ठा से जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों को पीछे छोड़ती जा रही हैं वहीं आज वे पथभ्रष्ट भी हुई हैं यह सत्य है।

कारण– जहाँ नारियों का स्थान पुरुषों के बराबर ही नहीं उनसे बहुत ऊँचा था वहाँ पुरुषों द्वारा नारियों को पुरुषों का अनुकरण व पुरुष समानाधिकार की प्राप्ति के लिए उकसाया गया, नारी मुक्ति आन्दोलन के

1. यजु. 26/2

नारे लगाये गये। जिनसे जहाँ उनके स्वत्व का अपहरण हुआ वहीं समाज में मातृत्व की जो प्रतिष्ठा थी, नारी की जो लज्जा थी, शील और मर्यादा थी वह भी धीरे-धीरे प्याज के छिलके की तरह अधिक और अधिक की चाहत में उधड़ती चली गयी। वस्तुतः इस प्रवृत्ति को उभारने वाली वे संस्थाएँ भी थीं जिनका दूर-दूर से भी आर्य समाज, वेद और अपनी संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं था। एक तरफ वेदों के माध्यम से नारी जागरण का शङ्ख फूँका जा रहा था, घोंचू पण्डितों से लोहा लिया जा रहा था दूसरी तरफ पाश्चात्य संस्कृति का प्रवेश हो रहा था जिससे नारियाँ दिग्भ्रमित हुईं। और स्थिति यह है कि आज किसने इन्हें इस अन्धेरी काल कोठरी से निकालने की पहल की और निकाल कर बाहर किया इसका इन्हें ज्ञान ही नहीं। आज की नारी भौतिकता की आँधी में आपादमस्तक धूलि धूसरित हो अपना विकृत चेहरा लिए बस बेतहाशा भाग रही है पर इससे कुछ हासिल हुआ है क्या?

आज समाज में बढ़ती हुई दहेज की प्रवृत्ति उसके अभाव में उन्हें अमानुषिक प्रताड़नाएँ जिन्दा तक जलाया जाना अथवा स्वयं उन्हें आत्महत्या के लिए विवश कर देना तथा इससे भी बढ़कर उसे जिन्दा लाश बनाकर छोड़ने वाली बलात्कार जैसी शर्मनाक, भ्रूण हत्या जैसे जघन्य पापों ने नारी को कहीं का छोड़ा है क्या? यह सत्य है कि आज भी जिन घरों परिवारों में आर्यसमाज का- वैदिक धर्म का पीढ़ी दर पीढ़ी से दूर का भी सम्बन्ध रहा है या जिन्होंने नारी जागरण के पीछे महर्षि की उस पीड़ा को उनके उस उद्देश्य को आत्मसात् किया है वहाँ महिलाओं का आत्म सम्मान आज भी सुरक्षित है तथा वे समाज में एक आदर्श सच्चरित्र कर्त्तव्यनिष्ठ महिला के रूप में प्रतिष्ठित हुई हैं और हो रही हैं पर वह प्रतिशत बहुत न्यून है नगण्य है।

आज आवश्यकता है महर्षि के स्वप्नों की नारी का सिंहावलोकन करने की, उनके वेदभाष्यों का पुनः आलोडन करने की जिससे कि नारियाँ पुनः अपने मूल से जुड़कर अपने स्वत्व की पहचान को स्थापित कर सकें।

***

नारियों के अधिकार व कर्त्तव्य

यत् ते नाम सुहवं सु प्रणीतेऽनुमते अनुमतं सुदानु।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम्।।[1]

इस मन्त्र में पत्नी को **अनुमति** शब्द से सम्बोधित किया है। अनुमति से अच्छा नाम शायद सुमति हो सकता है पर नहीं, वेद कहता है तू दुनियाँ के लिये सुमति हो सकती है पर मेरे लिए, मुझ पति के लिए तो तू अनुमति ही है। सुमति का अर्थ होता है अच्छी मति अच्छी बुद्धि। सुमति से मनुष्य चाहे तो धन कमा सकता है, विद्या प्राप्त कर सकता है, यश प्राप्त कर सकता है और बहुत कुछ कर सकता है। कहा गया है– **बुद्धिर्यस्य बलं तस्य** जिसके पास बुद्धि है बल उसी के पास है अर्थात् उसके पास सब कुछ कर सकने का सामर्थ्य है। नैपोलियन बोनापार्ट कहा करते थे मेरे जीवन से असम्भव शब्द निकाल दो। संसार में कुछ भी ऐसा नहीं जो मैं न कर सकूँ, क्यों? क्योंकि मेरे पास मनन करने वाली मति है, बुद्धि है और वह भी सुमति हो तो कहना ही क्या?

पर पति कहता है अपनी पत्नी से– नहीं! तू संसार के लिए सुमति हो सकती है पर मेरे लिये मेरे, परिवार के लिए तो तू अनुमति ही है। अनुमति का अर्थ है अनुकूल मति। अनुमति और सुमति दोनों शब्दों में केवल उपसर्ग का भेद है, पर अर्थ की गम्भीरता विचारणीय है। पारिवारिक सामञ्जस्य, पारिवारिक सौहार्द, पारिवारिक संगठन का आज अभाव हो रहा है। संयुक्त परिवार बिखरते जा रहे हैं, नष्ट होते जा रहे हैं। इन सबका मूल कारण कौन है? विचार करें तो नारी ही है। क्योंकि पत्नी चाहे तो अपनी अनुमति अर्थात् सबको अनुकूल बना लेने वाली अपनी मति से अथवा स्वयं सबके अनुकूल

---

1. अथर्व. 7/20/4

बन जाने वाली बुद्धि से (यह विवेक भी वैदिक ज्ञान के द्वारा ही प्राप्तव्य है) पूरे परिवार को एकता के सूत्र में आबद्ध कर सकती है।

मन्त्र कहता है– **अनुमते यत् ते नाम** = हे अनुमति! जो तेरा नाम **सुहवं** = सुखपूर्वक बुलाने योग्य है **अनुमतं** = सबके द्वारा अनुमत है, स्वीकृत है **सुदानु** = सुखदायी है, इसलिये तेरे नाम के साथ मैं एक विशेषण और जोड़ता हूँ, **सुप्रणीते** = तू सुन्दर प्रणय के योग्य है, प्रेम के योग्य है। तू प्रणयपूर्वक लायी गई सुप्रणीता है। प्रणय और परिणय में भी केवल उपसर्ग का ही भेद है। जब कन्या के अन्दर प्रणय (प्रेम) जागेगा तभी उसे परिणय के बन्धन में बाँधा जा सकता है।

आगे मन्त्र में कहा– अपनी उस अनुकूल बुद्धि, अनुकूल स्वभाव, अनुकूल प्रियाचरण से तू नः यज्ञं = हमारे इस गृहस्थ यज्ञ को पिपृहि = पूर्ण कर दे उसे अपनी पालन शक्ति से पूर्णता प्रदान कर दे (परिपालनपूरणयोः) क्योंकि सकल जगत् का उत्पादक तो वह परमेश्वर है, यह निश्चित ही है, अतः हम तो केवल पालन ही कर सकते हैं।

अन्त में मन्त्र में एक और बहुत प्यारा संबोधन नारी के लिये दिया **विश्ववारे** = तू विश्ववारा है, तू सबके द्वारा वरण करने योग्य (वृञ् वरणे) है। अपनी ममता, स्नेह व प्यार से सबका आच्छादन करने वाली (वृञ् आच्छादने) है। तू परिवार के छोटे-बड़े सब जनों के दुःखों का, कष्टों का, समस्याओं का निवारण करने वाली (वारयति) है। अतः तेरा नाम विश्ववारा है। यह सत्य है नारी जहाँ जिस भी क्षेत्र में होगी वहाँ दुःख, कष्ट घरेलू छोटी बड़ी समस्यायें तो रहेंगी ही नहीं अतः वह सबके द्वारा वरणीय है।

एक सम्बोधन अभी और शेष है। मन्त्र में कहा– **सुभगे** = तू सुभगा है। तेरा भग सुखदायी है, तू सौभाग्यवती है। इसलिये मैं प्रार्थना करता हूँ कि **तू सुवीरं रयिं** = अच्छे वीर पराक्रम से युक्त पुत्र रूप धन को हमारे लिये **धेहि** = धारण कर, और उसका पोषण भी कर (डुधाञ् धारण

पोषणयोः) क्योंकि उत्तम संस्कार देकर अच्छे पालन-पोषण के द्वारा सुसन्तान-प्राप्ति की तू ही आधार है। वैदिक नारी अपने इस कर्त्तव्य का बोध अच्छी प्रकार करती थी वह घर की व्यवस्था में, गृह के संयोजन में तथा सन्तान के निर्माण में अपने अधिकार और दायित्व को समझती थी। इसीलिये वेद के शब्दों में वह अधिकार पूर्वक कहती थी–

अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद।
ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्त्तयाश्चन॥[1]

इस घर में **अहं वदामि** = मैं बोलती हूँ, मैं बोलूँगी **नेत् त्वं** = तू नहीं! कभी नहीं, हाँ! सभा में, बाहर सोसायटी में तू बोल, तुझे जितना बोलना हो साथ ही वेद के शब्दों में वह आगे सचेत करते हुये कहती है– तू बाहर जा रहा है जा! लेकिन ध्यान रखना **ममेदसः त्वं केवलः** = तू केवल मेरा ही है **नान्यासां कीर्त्तयाश्चन** = बाहर किसी और की परायी स्त्री का कीर्त्तन भी मत करना, नाम भी मत लेना। इस प्रकार नारी तो स्वयं पतिव्रती होती ही है उसे होना भी चाहिये पर पुरुष को भी छूट नहीं है, यह मन्त्र ने स्पष्ट कर दिया। पुरुष को भी एक पत्नीव्रत बन कर ही रहना है किसी दूसरी स्त्री का उसे नाम भी नहीं लेना है।

मन्त्र में नारी को **सुभगा** शब्द से सम्बोधित किया है। और समाज में विवाहित नारी को सौभाग्यती भव, अखण्ड सौभाग्यवती का आशीर्वाद दिया जाता है। उसका सौभाग्य विवाह और पति के साथ जोड़ दिया जाता है। इसीलिये पति के मर जाने पर सुहाग के, सौभाग्य के विवाहिता के जो चिह्न हैं बिन्दी, सिन्दूर और अन्य शृंगार आदि उनसे सदा के लिये उसे वञ्चित कर दिया जाता है मानो पति ही उसका सौभाग्य था। लेकिन वेद के ही शब्दों में मैं एक अन्य बात यहाँ कहना चाहती हूँ जिसमें किसी भी नारी को सदा सुहागिन कहा जा सकता है। वहाँ कहा है– वह नारी जो वेद-विदुषी

---

1. अथर्व. 7/39/4

हो अध्यात्म पथगामिनी हो, उसका पति कभी भी **जरसा** = जीर्ण, शीर्ण होकर वृद्धावस्था के कारण नहीं मरता क्योंकि उसका पति इन्द्र है, परमात्मा है। वैसे तो परमेश्वर पालक होने से सभी का, प्राणिमात्र का पति है **भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्** आदि मन्त्रों में यही कहा है, पर वह परम प्रभु ही जिसका आराध्य देव है, प्राप्तव्य है, ऐसी नारी कभी भी विधवा या सुहाग से हीन नहीं हो सकती। वेद के शब्दों में–

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
नह्यस्या अपरंचन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥[1]

इन सभी नारियों में उस नारी को मैंने सदा सौभाग्यवती सुना है जिसने अपना पति इन्द्र को बना लिया है। इन्द्र अर्थात् आत्मा अथवा परमात्मा। वही जिसका आराध्य है प्राप्तव्य है। अतः वह कहती है मेरा पति इन्द्र तो **विश्वस्मात् उत्तरः** = संसार के सभी पुरुषों से उत्तम है श्रेष्ठ है।

इस प्रकार नारी के लिये पत्नी के लिये प्रयुक्त अनुमति, सुप्रणीति, विश्ववारा और सुभगा– ये विशेषण वेदों में नारी के कर्त्तव्य व अधिकार के ज्ञापक हैं। यज्ञ को पूर्ण करना व उसका पालन करने का दायित्व नारी पर है। यदि पुरुष समाज अपने अतिरिक्त बल के प्रयोग से इस वेदाज्ञा का उल्लंघन कर नारी के अधिकारों पर प्रहार करेगा तो आज के अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार से युक्त दुर्दिन ही उसका परिणाम हो सकते हैं, यह सुनिश्चित है।

***

जून 2011 उज्जैन का मुख पत्र आर्य संकेत पत्रिका तथा पाणिनि प्रभा पत्रिका के वेदवाणी स्तम्भ में प्रकाशित

---

1. ऋ. 10/86/11

ब्राह्मण महिला एवं संस्कार

संस्कार का अर्थ–

सम् उपसर्ग पूर्वक डुकृञ् करणे धातु से घञ् प्रत्यय करके संस्कार शब्द बनता है। संस्करणम् संस्कारः अच्छा करने का नाम है संस्कार। चरक ऋषि के अनुसार– **गुणान्तराधानं संस्कारः** किसी भी वस्तु के गुणों को बदल देना अर्थात् उसमें गुणान्तर का आधान कर देना, इसी का नाम संस्कार है। यह संस्कार की प्रक्रिया जड़-चेतन दोनों में संभव है।

तीन प्रकार की प्रवृत्ति–

यह सम्पूर्ण चराचर जगत् त्रिगुणात्मक प्रकृति का परिणाम है। इसका मूल उपादान कारण प्रकृति है। **सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः**[1] अर्थात् सत्व, रज और तम इन तीन गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। संसार के जितने भी पदार्थ हैं उनमें इन तीनों का कम या अधिक समावेश है। कोई सत्वगुण-प्रधान है, कोई रजोगुण, कोई तमोगुण- अन्य दोनों गुण भी उनमें यद्यपि साथ-साथ रहते हैं पर वे उसकी अपेक्षा न्यून होते हैं। इन्हीं गुणों के न्यूनाधिक होने से मनुष्य में प्रवृत्ति का भेद होता है पर उन प्रवृत्तियों को इच्छानुसार ऊपरी संस्कार के द्वारा बहुत कुछ बदला जा सकता है। जैसे एक लौकी को यदि कोई जीरा, हींग से छोंकता है तो वह सात्विक भोजन है, यदि उसमें मिर्च, टमाटर, थोड़ी प्याज का प्रयोग करता है तो वह राजसिक हो जायेगा, यदि उसी को लहसुन, प्याज, मिर्च-मसाला डाल कर तल कर बनाया जाये तो वह तामसिक बन जायेगा।

मनुष्य और संस्कार–

इसी प्रकार मनुष्य की प्रकृति और प्रवृत्ति में भी भेद होता है जिसे बहुत कुछ

---

1. सांख्य 1/1/61

बाह्य संस्कारों के द्वारा दबाया जा सकता है, उसमें नये गुणों का आधान किया जा सकता है। गर्भाधान से पूर्व माता-पिता की सोच, गर्भ काल में माता के खान-पान, आचार-विचार बालक के उत्पन्न होने के बाद उसका लालन-पालन, बड़ा होने पर उचित परिवेश, पास-पड़ोस की संगत, स्कूल आदि का परिवेश बच्चे की प्रवृत्ति को अच्छा या बुरा बनाने में बहुत सहायक होते हैं। वेद के अनुसार हर उत्पन्न बालक या बालिका पशु सदृश है जिसे प्रथम मनुष्य बनाया जाता है। मनुष्य उसे कहते हैं जो मननशील, विचारशील हो- **मननात् मनुष्यः**। इसीलिये वेद का आदेश है– **मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्**[1] तुम मनुष्य बनो और अपने अन्दर दिव्यता को, देवत्व को पैदा करो।

पृथग्रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवति सं समृद्ध्या।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा॥[2]

इस मन्त्र में बालक को पशु बताया है और बताया है कि इन पशुओं के नाना रूप हैं, इनमें कोई श्ववृत्ति का है, कोई गर्दभवृत्ति का, तो कोई तोतावृत्ति का इन्हें आचार्य को अपने गुरुकुलीय आश्रमीय परिवेश में रखकर, ज्ञान देकर एकरूप बनाना है, इनकी रजस्तमोमयी त्वचा को प्रवृत्ति को बदलना है और जिस प्रकार एक धोबी वस्त्रों को रगड़-रगड़ कर आवश्यकता पड़ने पर कूट-पीट कर उन्हें साफ करता है, चमकाता है, उसी प्रकार आचार्य बालक को संशोधित करे उसे चमकाये।

स्त्री-पुरुष सभी के लिये संस्कार आवश्यक–

यह प्रक्रिया चाहे स्त्री हो या पुरुष यानी बालक हो या बालिका सब के लिये आवश्यक है। क्योंकि मनुष्य योनि में जन्म लेने वाली प्रत्येक सन्तान पहले प्रजा है, वह स्त्री या पुरुष नहीं। वेद में कहीं भी स्त्री सन्तान या पुरुष

---

1. ऋ. 10/53/6
2. अथर्व. 12/3/21

सन्तान विशेष की कामना नहीं की गई है, वहाँ प्रजा की कामना की गई है। नारी को प्रजावती कहा है **इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु**[1] इस नारी को प्रजा देकर बढ़ायें, यह प्रजा वाली हो, यही प्रार्थना और कामना विवाह संस्कार के समय पति करता है और कहता है हम दोनों मिलकर– **प्रजां प्रजनयावहै**[2] प्रजा को उत्पन्न करें। प्रजा का अर्थ ही है जो प्रकर्ष से उत्पन्न हो। प्रकर्ष संस्कारों से आता है और उस प्रकर्ष की संस्कार की आवश्यकता प्रजा को है अन्यथा वह प्रजा न होकर पशु बन जायेगा।

सन्तान के निर्माण में नारी की भूमिका–

यह निर्विवाद तथ्य है कि सन्तान के निर्माण में नारी की प्रमुख भूमिका होती है। माता वही है जो निर्माण करती है अन्यथा वह केवल जननी है। माता सन्तान की पहली गुरु है, पहली पाठशाला है इसीलिये उसका गौरव उपाध्याय, आचार्य और पिता से भी हजार गुना अधिक आँका गया है–

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्त्रन्तु पित न्माता गौरवेणातिरिच्यते।।[3]

वेद में नारी के तीन नाम व रूप बताये हैं– **इडा, अदिति व सरस्वती।** इडा वह है जो अपने व्यवहार से प्रशंसनीय हो, अदिति वह जो अपने धर्म, कर्म के पालन में अखण्डित हो। महर्षि यास्क ने–**अदितिः अदीना देवमाता।**[4] अर्थात् जो देवों की माता, देवों का निर्माण करने वाली होकर कभी दीन नहीं होती वह अदिति है, सरस्वती विदुषी नारी को कहते हैं। यजुर्वेद के एक मन्त्र में उसे इडा अदिति सरस्वती मही विश्रुति आदि नामों से संबोधित करते हुए उससे प्रार्थना की गई है कि तू इतने गुण, संस्कार व ज्ञान से सुभूषित है तू हमें

---
1. अथर्व. 14/1/54
2. विवाह संस्कार में प्रतिज्ञा मन्त्रों के अन्तर्गत
3. मनु. 2/145
4. निरु. 4/4/49

सुकृत का उपदेश कर हमें देव बना– **देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्**[1]। इस प्रकार यदि नारी स्वयं सुसंस्कृत, सुपठित नहीं होगी तो वह दूसरों का क्या निर्माण करेगी? इसलिये नारी का सुपठित, सुशिक्षित, सुसंस्कृत, आचारवान् होना पुरुष से अधिक आवश्यक है। किन्तु पुरुष का सुसंस्कृत होना भी अत्यन्त आवश्यक है कम से कम इसलिये जिससे कि वह नारी का सम्मान उसका मूल्यांकन कर सके।

मध्यकाल और नारी–

किन्तु मध्यकाल में न जाने किन-किन झमेलों में फंसा कर नारी को शिक्षा से वेदाध्ययन से वञ्चित कर दिया गया और स्त्री और शूद्र को एक श्रेणी में खड़ा कर दिया गया। जिसका परिणाम हमारे सामने है, आज न कोई वर्ण व्यवस्था है, न आश्रम व्यवस्था है, न आचार है, न विचार है, न धर्म है, न कर्म है, केवल प्रदर्शन को ही हमने धर्म-कर्म मान लिया है जिसके चलते पूजा-पाठ का ढोंग-पाखण्ड बढ़ रहा है, अन्याय अत्याचार अपने चरम पर है। इन्हीं कारणों से जहाँ वैदिक युग में स्त्री-पुरुष की शिक्षा-दीक्षा में कोई भेद न था पुरुषों के समान नारियाँ भी ब्रह्मचर्य धारण कर वेदाध्ययन करती थीं। ब्रह्मचर्य की समाप्ति पर गृहस्थ आश्रम में जाती थीं– **ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।**[2] ब्रह्मचर्यपूर्वक कन्या युवा पति को प्राप्त करे, यह वेद का आदेश इसमें प्रमाण है। किन्तु जब इसमें रोक लगाई जाने लगी तो शास्त्रों में नये सिरे से चिन्तन आरम्भ हो गया, स्त्रियों के संस्कार प्रतिबन्धित होने लगे, जो होते भी थे उनके लिये अमन्त्रक विधान था **तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः** केवल विवाह को छोड़ कर शेष संस्कार **तूष्णीं** बिना कुछ बोले चुपचाप **अमन्त्रक** किये जायें यह विधान कर

---

1. यजु. 8/43
2. अथर्व. 11/5/18

दिया गया। स्त्रियों के लिये न कोई यज्ञ, न व्रत, न उपवास विहित था केवल पति की सेवा करना ही उनका धर्म बना दिया गया था–

नास्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
शुश्रूषयति भर्त्तारं तेन स्वर्गे महीयते॥

ऐसी स्थिति में कात्यायन श्रौतसूत्र के आरम्भ का वह प्रकरण मननीय है। आचार्य कात्यायन अपने श्रौतसूत्र के आरम्भ में लिखते हैं– **अथातोऽधिकारः** अब वेदाध्ययन के अनन्तर कौन इस ग्रन्थ को पढ़ने व यज्ञ-यागादि करने का अधिकारी है, इसका विवेचन किया जायेगा। इस प्रस्तावना के साथ आगे वे लिखते हैं– **सर्वेषामविशेषात्** अर्थात् सभी इसके अधिकारी हैं क्योंकि याग करने का जो फल है स्वर्ग की प्राप्ति, **स्वर्गकामो यजेत,** यह शास्त्र का वचन है, इसकी अपेक्षा सबको है इसलिये सभी इसके अधिकारी हैं लेकिन जो अंगहीन हैं, शूद्र हैं, अन्धे-बहरे, लगड़े-लूले हैं वे इसके अधिकारी नहीं हो सकते। फिर स्त्री के अधिकारानधिकार विषय को उठाते हुए वे आगे के सूत्र में लिखते हैं– **स्त्री चाविशेषात्** स्त्री को भी वेदाध्ययन के अनन्तर श्रौत ग्रन्थों के अध्ययन व याग करने का अधिकार है क्योंकि स्वर्ग की कामना स्त्री-पुरुष सबमें समान है। इस प्रकार वेदाध्ययन और यागादि का अधिकार स्त्री को भी है यह विवेचन आरम्भ हो गया था और इन दोनों विधि निषेधों के बीच तालमेल बिठाते हुए– **द्विविधाः स्त्रियः- ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च** (हारीतस्मृति) स्त्रियों के दो भेद हैं 1. ब्रह्मवादिनी 2. सद्योवधू आदि लोग लिखने व कहने लगे थे। जो भी हो वेदाध्ययन तो बिना ब्रह्मचर्य धारण किये बिना ब्रह्मचर्य की दीक्षा लिये असंभव है। और ब्रह्मचर्य की दीक्षा यज्ञोपवीत संस्कार के द्वारा ही होती है और वेद का अध्ययन वेदारम्भ संस्कार करके ही होता है इसलिये महिलाओं का भी यज्ञोपवीत व वेदारम्भ संस्कार होना चाहिये यह सिद्ध है।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य सभी द्विज होते हैं–

द्विज का अर्थ होता है दूसरा जन्म। माता-पिता के सम्बन्ध से जो जन्म होता है वह बालक का प्रथम जन्म है। दूसरा जन्म आचार्य की कुक्षि से होता है। जब बालक एक आचार्य के सान्निध्य में रह कर पूरी विद्या पढ़ कर स्नातक बनता है तब वह द्विज कहलाता है। अथर्ववेद के ब्रह्मचारी सूक्त में इसका बहुत सुन्दर वर्णन है–

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्त्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥[1]

इस मन्त्र में कहा है कि आचार्य बालक का उपनयन संस्कार करता हुआ उसे अपने गर्भ में धारण करता है और त्रयी विद्या का ज्ञान देने के लिये मानों तीन रात्रि अपने उदर में धारण कर उसे नया जन्म देता है। उस द्विजन्मा ब्रह्मचारी को देखने के लिये उस समय देवगण एकत्र होते हैं। द्विज का अर्थ ब्राह्मण ही नहीं, क्षत्रिय तथा वैश्य भी होता है क्योंकि ये सभी गुरुकुल में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे और स्नातक बनने पर द्विज कहलाते थे। मनु महाराज ने तो–

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥[2]

जो मनुष्य द्विज होकर भी वेद का अध्ययन नहीं करता है और अन्य विद्या का अभ्यास करता है, उसमें श्रम करता है वह अगले जन्म में नहीं अपितु इसी जन्म में पूरे वंश सहित शूद्रता को प्राप्त हो जाता है, यह कहा है।

जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं– वैदिक व्यवस्था में जन्म से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता है। एक ही माता की चार सन्तानों में से कोई

---

1. अथर्व. 11/5/3
2. मनु. 2/168

ब्राह्मण कोई क्षत्रिय या कोई वैश्य अथवा शूद्र हो सकता है। शूद्र भी ब्राह्मण हो सकता है और ब्राह्मण भी शूद्र बन सकता है यदि वह अपने धर्म, कर्म का पालन नहीं करता है।

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥[1]

अर्थात् धर्म का आचरण करने से निकृष्ट वर्ण भी अपने से उत्तम-उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और अधर्म का आचरण करने से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्ण वाला मनुष्य भी अपने से नीचे-नीचे वाले वर्ण को प्राप्त करता है, यह आपस्तम्ब धर्मसूत्र का वचन है। इतिहास भी इसमें साक्षी है, सत्यकाम जाबालि शूद्र का बेटा होकर भी ऋषि बना आदि।

ब्राह्मण का लक्षण व कर्त्तव्य– ब्रह्म अधीते वेद वा यः स ब्राह्मणः, ब्रह्म अर्थात् वेद का जो अध्ययन करे और उसी के प्रचार-प्रसार में अपना जीवन लगाये वह ब्राह्मण है–

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥[2]

वेद का पढ़ना-पढ़ाना, मन्त्रों से यज्ञ करना-कराना (पौरोहित्य कर्म) दान देना और लेना ये चार कर्म ब्राह्मणों के मुख्य हैं, आज तो लेना ही ब्राह्मणों का धर्म रह गया है देना नहीं। श्रीमद्भगवद्गीता में भी–

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्॥[3]

शम, दम, तप, शौच (पवित्रता) क्षान्ति (क्षमा-सहनशीलता), सरलता, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता ये ब्राह्मण के स्वाभाविक गुण बताये गये हैं।

1. आप. धर्मसूत्र 2/5/11/10-11
2. मनु. 1/88
3. गीता. 18/42

ब्राह्मण के लिये यह आवश्यक बताया है कि वह मान-सम्मान से विष के समान दूर रहे और अमृत के समान अपमान की ही कामना करे, किन्तु आज के ब्राह्मण अहंकार में डूबे सम्मान की ही आकांक्षा सदा करते हैं और किसी प्रकार भूल से अपमान हो जाने पर क्षमा करने की अपेक्षा वे उसे शाप देने का भय दिखाते हैं।

महिलाओं के सभी संस्कार आवश्यक–

वैदिक काल की भाँति आज भी महिलाओं के सभी संस्कार करना अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा वे आत्म कल्याण तो पृथक् उत्तम सन्तान का निर्माण भी नहीं कर सकती हैं। स्वयं संस्कार के अभाव में वे दूसरों को भला क्या संस्कार देंगी? पुरुषों के संस्कार समन्त्रक हों महिलाओं के संस्कार अमन्त्रक, इस भेद भाव की नीति का आज कोई औचित्य नहीं है। पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं का संस्कारवान् होना आज अधिक आवश्यक है क्योंकि उनकी कोख में, उनकी गोद में बच्चा नहीं राष्ट्र का कर्णधार पलता है। माँ जैसा चाहे सन्तान वैसी बन सकती है। उसका आचार-विचार, धर्म-कर्म, शील-स्वभाव सब सहज रूप से बच्चा माँ के पेट में ही सीख लेता है। इसीलिये वेदों में बार-बार कभी सिनीवाली, कभी राका, कभी अनुमति, कभी सरस्वती आदि नाम से सम्बोधित कर प्रार्थना की गई है कि तू उत्तम प्रजा रूप धन को प्रदान कर।

सोलह संस्कारों के नाम व उद्देश्य–

1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमन्तोन्नयन ये तीन संस्कार बच्चे के जन्म लेने से पूर्व किये जाते हैं। 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. निष्क्रमण, 7. अन्नप्राशन, 8. चूडाकर्म, 9. कर्णवेध, 10. उपनयन, 11. वेदारम्भ, 12. समावर्तन, 13. विवाह, 14. वानप्रस्थ, 15. संन्यास, 16. अन्त्येष्टि ये सोलह संस्कारों के नाम हैं जबकि आज 16 संस्कारों के नाम गिनाना भी विद्वानों व ब्राह्मणों के लिये कठिन है। ये सभी संस्कार मनुष्य के सर्वाङ्गीण

विकास के लिये उसे जीवन के उद्देश्य रूप– पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम ही नहीं मोक्ष तक की प्राप्ति के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। गृहस्थ में रह कर ही मृत्यु को प्राप्त करने से हम कभी मोक्षगामी नहीं बन सकते। वानप्रस्थी बनना सबके लिये अनिवार्य होना चाहिये। वानप्रस्थ आश्रम में रहते हुए पुत्रैषणा लोकैषणा यशैषणा से दूर होने का अभ्यास करना चाहिये और जब इस अभ्यास में परिपक्वता आ जाये तभी संन्यास आश्रम में दीक्षित होकर हम पूर्ण पुरुष बनेंगे।

महिला ब्राह्मण एवं संस्कार–

महिला ब्राह्मण हो या पुरुष ब्राह्मण, यही नहीं कोई ब्राह्मण हो या अन्य वर्णस्थ, संस्कारों का उद्देश्य मानव का निर्माण करना है, उसकी पशुता को, स्वार्थवृत्ति-लोभवृत्ति को दूर कर उसे परस्पर प्रेम, सौहार्द, आदान-प्रदान, स्नेह सम्मान-पूर्वक जीना सिखाना है, प्राणिमात्र के प्रति करुणा भाव, मित्र की दृष्टि, प्रकृति से प्रेम, प्रकृति के अनुकूल चलना, सबको बहन-भाई समझना, हिन्दू-मुस्लिम आदि सम्प्रदायगत व जातिगत ऊँच-नीच का भेदभाव मानना मानवता के विरुद्ध है। धरती सबकी माता है आकाश सबका पिता है सूर्य-चन्द्र, जल-वायु सबके मित्र हैं भ्राता हैं यदि ये किसी के प्रति भेद भाव नहीं रखते तो क्या हमें भेदभाव करना चाहिये? नहीं। संस्कारों का लाभ यही है जिसकी आवश्यकता सब स्त्री-पुरुष को है।

ब्राह्मण महिला हो या पुरुष, ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी वही है जो वेद के पठन-पाठन,प्रचार-प्रसार के प्रति समर्पित हो, वही उसका व्यवसाय हो। स्त्री मात्र का सुपठित सुशिक्षित सुसंस्कृत होना आज भी नितान्त आवश्यक है।

***

10 नवम्बर, 2013 केन्द्रीय ब्राह्मण महासभा वाराणसी की ''जनमानस'' स्मारिका में प्रकाशित

वेदों में नारी के वित्तीय अधिकार

यद्यपि वेद में स्त्री-पुरुष के अधिकारों में कोई भेद नहीं है, यह पहले भी मैं लिख चुकी हूँ, पुनरपि चाहे लोक हो या वेद, आज भी पारम्परिक नारी को लक्ष्मी रूपा ही माना जाता है। घर में कन्या का जन्म लेना, वधू रूप में कन्या का पतिगृह में प्रवेश करना लक्ष्मी का आगमन ही माना जाता है। इसीलिये बेटी के बाप को वेद में धनपति कहा गया है। बेटी के विवाह के लिये वर का आह्वान करने वाले पिता को **आक्रन्दय धनपते वरमामनसं कृणु**[1] इस मन्त्र में धनपति शब्द से सम्बोधित किया गया है। लोक में भी– **अर्थो हि कन्या परकीय एव** (शाकुन्तल) कन्या एक धन है जिसकी रक्षा पिता तब तक करता है जब तक कि वह उसे सुयोग्य सत्पात्र सौम्य राजा समान वर को उसे सौंप नहीं देता।

वेद में नारी को सुभगा, रेवती, वस्वी, मघोनी, भगवती, सुरत्ना जैसे शब्दों से सम्बोधित किया है, ये सभी शब्द धन वाचक हैं जिससे सिद्ध होता है कि परिवार में स्त्री का धन-धान्य पर पूर्ण अधिकार ही नहीं अपितु वही परिवार के सदस्यों का ध्यान रखती हुई आवश्यकतानुसार सब में धन-धान्य का वितरण व उसका पुण्य कर्म में सदुपयोग दानादि देकर करती है। वस्तुतः यह अनुभव-सिद्ध बात है कि जिन घरों में धन कमाकर पति अपनी कमाई को स्त्री के हाथ में सौंप देता है और उसके ऊपर विश्वास कर गृह संचालन का दायित्व उसे दे देता है, उस घर में किसी प्रकार का अभाव-बोध नहीं होता। जबकि यदि पुरुष अपनी कमाई को स्त्री के हाथ में न देकर अपने पास रखता है और बार-बार माँगने पर थोड़ा-थोड़ा देता है उस घर में सदा अभाव का रोना बना रहता है। इसीलिये यह वैदिक व्यवस्था है– विवाह के समय वर कन्या का हाथ थामते हुए कहता है कि– तू सुभगा है मैं अपने

---

1. अथर्व. 2/36/6

जीवन में सौभाग्य की वृद्धि धन-धान्य की समृद्धि के लिये तेरा हाथ ग्रहण करता हूँ- **गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्।**[1]

अथर्ववेद के एक मन्त्र में स्पष्ट रूप से कहा है कि जिस प्रकार अग्नि इस रत्नगर्भा हिरण्यवक्षा वसुधानी प्रतिष्ठा-भूमि को जो कि हर प्रकार के हीरे, जवाहरात, लोहा, ताँबा, तेल आदि खनिज पदार्थ ही नहीं अन्न ओषधि वनस्पति आदि धन धान्य का आधार है उस पृथिवी का साथ कभी नहीं छोड़ता वह इन सभी पदार्थों में व्याप्त होकर मानो उसके दक्षिण हस्त को सदा पकड़ कर ही रखता है, उसी प्रकार-

येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम्।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च।।[2]

मैं भी यावज्जीवन जरावस्था पर्यन्त कभी साथ न छोड़ने के लिये तेरे दक्षिण हस्त (दाहिने हाथ) को पूर्ण सहयोग की भावना से पकड़ता हूँ। मेरे साथ रहकर तू कभी भी व्यथा को न प्राप्त हो, तुझे कभी भी प्रजा और धन का अभाव व्यथित न करे, यह मेरी प्रतिज्ञा है। वस्तुतः धन-धान्य का भण्डार रत्नों का आगार तो स्वयं पृथ्वी है किन्तु अग्नि का साहचर्य उसे सदा जीवन्त तरोताजा परिमार्जित बनाकर रखता है, उसके अभाव में पृथिवी से जन्म लेने वाली ये ओषधियाँ, वनस्पतियाँ मुरझा जाती हैं, अखाद्य और असेव्य हो जाती हैं, उसी प्रकार यद्यपि स्त्री स्वयं सुरत्ना है सुभगा है फिर भी उसके सम्पूर्ण विकास व बच्चों के निर्माण के लिये तन मन से पुरुष-साहचर्य का होना अति आवश्यक ही नहीं अग्नि और पृथिवी के समान प्रकृति प्रदत्त है। अथर्ववेद के ही एक अन्य मन्त्र में-

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य।।[3]

---

1. ऋ. 10/85/36
2. अथर्व. 14/1/48
3. अथर्व. 14/1/43

अर्थात् जिस प्रकार प्रत्यक्ष में वर्षा करने वाला समुद्र नदियों के कारण जल का सम्राट् बनता है, जल के साम्राज्य को प्राप्त करता है उसी प्रकार ऐ नारी! तू मुझ वृषा पति को, पतिगृह को प्राप्त कर मुझ पति के धन की मालकिन, साम्राज्ञी बन। और न केवल पति अपितु उस गृह के सास-ससुर, ननद-देवर आदि की भी तू साम्राज्ञी बन, ऐसा ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है।

पति के कुल व धन की रक्षिका नारी–

वेद में नारी को पति के कुल व उसके धन की रक्षिका कुलपा तथा **वशिनी**[1] कहा है।

सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम्।
यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया सम्मिश्ला ओजोभिरुग्राः॥[2]

इस मन्त्र में उसे सनातन काल से नृम्ण अर्थात् धन का पोषण करने वाली, शत्रुओं का पराभव करने वाली सुवीरा, वस्त्राभूषणादि अलंकारों से सुशोभित, श्री से युक्त तथा ओज तेज से परिपूर्ण कहा गया है। उसे अदिति अदीना देवमाता कहा है अर्थात् जो कभी अर्थाभावादि कारणों से दीनता को प्राप्त न होकर देवों की माता देवरूप सन्तान को जन्म देती है। वस्तुतः संसार में किसी भी प्रकार के कोष की समृद्धि व उन्नति का कारण योग और क्षेम होता है। गृहस्थ आश्रम में भी यदि पुरुष धन कमाकर धन का योग करता है तो नारी उसका उचित प्रबन्धन-विनियोजन कर उसे क्षेम सुरक्षा प्रदान करती है। ये साझे की यात्रा है। यह पारिवारिक जीवन का प्रेमपूर्ण सामञ्जस्य पूर्ण विभाजन है। जिसे धीरे-धीरे वैदिक संस्कारों से पृथग्भूत समाज ने उसकी कमजोरी समझ लिया और उसे सदा के लिये परतन्त्र, परमुखापेक्षी बना दिया। बच्चे को जन्म देना, उनका पालन-पोषण करना, उन्हें माता बनकर सुशिक्षा सुसंस्कार चरित्र से युक्त करना सन्तान के रूप में

---

1. ऋ. 10/85/26
2. ऋ. 7/56/3

परिवार का समाज का राष्ट्र का निर्माण करना यह बहुत बड़ा दायित्व है। इसीलिये वेद की नारी कहती है–

अहं वदामि नेत्त्वं सभायामह त्वं वद।
ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्त्तयाश्चन॥[1]

इस घर में मेरा अधिकार है। मैं बोलूँगी आप नहीं, आपको बोलना है तो आप बाहर जाकर सभा में बोलो पर बाहर जाने-बोलने की छूट देने का मतलब यह नहीं है कि तुम किसी के भी साथ आनन्द मनाओ, अपितु ध्यान रखना! तुम केवल मेरे ही हो इसलिये बाहर जाकर किसी अन्य का कीर्त्तन मत करने लग जाना। वेद के इस मन्त्र से जहाँ नारी का आत्मविश्वास प्रकट होता है वहीं अपने पति पर पूर्ण अधिकार भी।

कागजों व पत्थरों में सिमटी घर की लक्ष्मी–

पर धीरे-धीरे हर दृष्टि से हर धर्म-सम्प्रदाय में नारी को जहाँ अपमानित और अधिकार विहीन किया गया जैसे- सन्तान को जन्म देने जैसे पवित्र यज्ञिय कर्म में भी पुरुष को ही प्रधानता दी गयी और कहा गया–ये तुम्हारी खेतियाँ हैं, इनमें जैसे चाहो बोवो, सुकोमल बच्चे के पालन के लिये आवश्यक कोमल मन, कोमल शरीर वाली नारी को दुर्बल समझकर यहाँ तक कह दिया गया कि इनमें रूह (आत्मा) नहीं है। बाबा आदम ने अपनी एक पसली से इनका निर्माण किया है। इनके स्नेही, भावुक, हर परिस्थिति में अनुकूलता बनाने वाले सामञ्जस्यपूर्ण स्वभाव को इनका सीधापन, कमजोरी समझ कर इन्हें पशु के समान हाँकने योग्य समझ लिया गया और कह दिया गया–'**ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी ये सब ताड़न के अधिकारी**।' इसी प्रकार इनकी स्वाभाविक ऊहा, प्रतिभा, बौद्धिक क्षमता को दबाने के लिये उन्हें पढ़ने के अधिकार से सर्वथा वंचित कर दिया। और 'कन्या रक्षणीय है, पत्नी सुरक्षणीय है, माता सम्माननीय है, पिता, पति और

---

1. अथर्व. 7/38/4

पुत्र के इस स्वाभाविक दायित्व बोध ने नारी को धीरे-धीरे बन्दिनी बना दिया वह अपने मूल रूप में बेजान कागजों व पत्थरों में सिमट गई। उसका शक्ति का रूप, दुर्गा और काली माता के रूप में पूजा जाने लगा। अब माता बच्चे को वीर नहीं बनाती, मंदिरों के पत्थर उसे वीर बनाते हैं। अब वीर बनने के लिये दुर्गा का काली का उपासक होना आवश्यक है। अब उनका धन वैभव समृद्धि का रूप लक्ष्मी के रूप में पूजा जाता है अब घर की नारी दरिद्र है। उसे घर चलाने के लिये दस बीस पचास रुपयों के लिये संघर्ष करना पड़ता है, पुरुषों के सामने हाथ फैलाना पड़ता है। इसी प्रकार अब घर की नारी बच्चों को ज्ञान संस्कार वैदुष्य नहीं देती, वो तो मूर्खा है, अब हंसवाहना सरस्वती विद्या की अधिष्ठात्री वाग्देवी हैं वही उन्हें सारस्वतावतार बनाती हैं।

आज महर्षि दयानन्द, श्रद्धानन्द, राजा राममोहन राय जैसे अनेक क्रान्तिकारी महापुरुषों द्वारा नारी जागरण का बिगुल बजाये जाने के फलस्वरूप नारियाँ हर क्षेत्र में फिर से अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा कर चमक चुकी हैं, चमक रही हैं पर इसी के साथ इस कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने की होड़ में, प्रतिद्वन्द्विता में वे घर के महत्त्वपूर्ण दायित्व को छोड़ कर अर्थार्जन की ओर अभिमुख हो चुकी हैं, उसी में अपनी काबिलयत योग्यता समझती हैं। आज बच्चे घर का ताजा बना खाना पसन्द नहीं करते (क्योंकि माताओं ने अपनी व्यस्ततावश बच्चों को बाजार के खाने का आदी बना दिया है, जिन्होंने नहीं बनाया है वे भी अपने साथियों को देख कर वही माँग करते हैं), आज बच्चे अपना मनोरंजन दादी-नानी की कहानियों से नहीं करते, वे कार्टून फिल्म व अन्य माध्यमों से साथ ही अपने समान बहके हुए दोस्तों से दिशा प्राप्त करने की अपेक्षा रखते हैं।

धन कमाना महत्वपूर्ण नहीं–

आज समाज में पैसा है पर चरित्र नहीं क्योंकि सबका एक ही लक्ष्य है पैसा। बच्चों को एल.के.जी. से लेकर कॉलेज तक पढ़ने भेजने का एकमात्र उद्देश्य उन्हें पैसा कमाने के लायक बनाना है पर धन कमाने का उद्देश्य क्या

है, उसका सदुपयोग क्या है, इस जीवन का उद्देश्य क्या है? किसी को नहीं पता। अन्तिम सांस तक कमाऊ बने रहना इसी में जीवन की सफलता मानते हैं। आखिर पैसा क्यों कमाते हैं? सुख पाने के लिये क्योंकि धन को ही सब सुख का आधार मानते हैं। धन सुख का आधार है, यह सत्य है पर परम्परा से। वस्तुतः सुख का मूल तो धर्म है, धर्माचरण है। और धर्म का मूल अर्थ धन है क्योंकि धन होगा तभी हम दान-पुण्य, दूसरों की सहायता आदि धर्म तथा पुण्य के कर्म कर सकते हैं, इसीलिये कहा **धनाद्धर्मं ततः सुखम्**। आज पैसा कमाने के पीछे लोग परिवार को भूल जाते हैं, देश को भूल जाते हैं, धर्म को भूल जाते हैं, स्वास्थ्य को चौपट कर लेते हैं और इस शरीर को धर्म का साधन न बना कर रोगों का सदन बना लेते हैं ऐसा पैसा कमाना निरर्थक है यह ज्ञान कौन देगा? माता देगी। ज्ञान की, संस्कार की, चरित्र की, तुलना पैसे से नहीं की जा सकती। प्रथम तो इस मानसिकता में सुधार करना होगा। द्वितीय जब तक पैसा कमाने वालों में संस्कार नहीं होगा हमारा पैसा स्विस बैंकों में जमा होता रहेगा, वह देश के काम नहीं आयेगा यह सत्य है। इसी देश में एक तरफ जहाँ करोड़ों के प्लाट महल खड़े हैं दूसरी तरफ वहीं पैसे के अभाव में कीड़े-मकौडों की जिन्दगी जीने वालों की झुग्गी-झोपड़ियाँ सड़ रही हैं। ये दूरियाँ संस्कारों के सद्ज्ञान के अभाव का परिणाम हैं जिसे एक सुशिक्षित वैदिक संस्कार-सम्पन्न नारी के रूप में माता ही दूर कर सकती है जिसकी तुलना पैसे से नहीं की जा सकती। स्त्री पैसा नहीं कमाती पैसा कमाने वालों को पैसे का सदुपयोग करने वालों को जन्म देती है। यमाचार्य द्वारा बालक नचिकेता को संसार की सारी सम्पत्ति का प्रलोभन दिये जाने पर बालक नचिकेता का–

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।[1]

धन से कोई तृप्त और सुखी नहीं हो सकता, धन तो हम प्राप्त कर ही लेंगे जब आप जैसे महापुरुष के दर्शन मैंने कर लिये हैं। मुझे तो मृत्यु और

1. कठो. 1/27

परलोक के विषय में ही जानना है। यह ऐतिहासिक बहुमूल्य वचन माता के सद्ज्ञान का ही परिणाम था।

गृहस्थ जीवन का सर्वोत्तम धन सन्तान–

याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी ने पति के द्वारा उपहार में दी गई सम्पत्ति को यह कहकर ठुकरा दिया कि **येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्**[1] जिस धन से भरी हुई पृथ्वी को प्राप्त कर मैं अमरता को नहीं प्राप्त कर सकती उसे प्राप्त कर मैं क्या करूँगी? यह वचन प्रमाण है कि अर्थ ही सब कुछ नहीं है, जीवन में अर्थ का स्थान नम्बर दो पर है अन्तिम सोपान तो मोक्ष है इस रूप में यह कथन अविस्मरणीय है। इसीलिये वेद कहता है, **नित्यस्य रायः पतयः स्याम**[2] हम नित्य धन के स्वामी बनें जो कि सुसंस्कारी प्रजा रूप धन के निर्माण से ही प्राप्त होता है। **रायस्पोषस्य ददितारः स्याम**[3] हम धन को प्राप्त कर उसे समाज के पोषण हेतु दान करने वाले बनें, यह वेद की शिक्षा है। यही अर्थ की सार्थकता है, यही अर्थ से समर्थ होना है।

नारी को धनार्जन करने का अधिकार–

वेद की नारी इसी रूप में लक्ष्मी है। वैसे नारी के लिये राजकीय कार्यों में **कोशकारी**[4] अर्थात् खजाने की मालकिन प्रचलित शब्दों में लिखें तो बैंक की मैनेजर व अन्य अधिकारी होगा। इसी प्रकार राज्ञी, **अश्वाजनी**[5] घोड़ों को प्रशिक्षित करने व घुड़सवारी करने वाली आदि अनेक विशेषण नारी के विभिन्न प्राशासनिक कार्यों में सहयोग देने तथा उसके माध्यम से धन कमाने की बात स्त्री-पुरुष दोनों के लिये सामान्य रूप से वेदों में निर्दिष्ट है।

---

1. बृ.उ. 2/4/3
2. ऋ. 7/4/7
3. यजु. 7/14
4. यजु.30/14
5. यजु.29/50

पैतृक सम्पत्ति पर नारी का अधिकार–

अन्तिम बात- एक प्रश्न यह भी है कि स्त्री का पिता की सम्पत्ति में अधिकार है या नहीं इस विषय में वेद क्या कहता है? तो वेद वही कहता है जो लोक मानता है कि विवाह के बाद उसका अधिकार पतिगृह में है फिर भी जब तब पितृगृह वापिस आने पर भाई उसे कभी खाली हाथ न भेजे, इसी भाव को विवाह में लाजाहोम के समय भाई द्वारा बहिन की अंजलि में धान की खील परोसने के द्वारा व्यक्त किया जाता है।

दूसरी बात पुत्री का भी पिता की सम्पत्ति पर अधिकार है, पर तब जब कि उसका कोई भाई न हो। उस समय वही बेटे के समान अपने माता-पिता की आवश्यकता पड़ने पर हर प्रकार से सेवा शुश्रूषा आदि पितृयज्ञ के कार्य करती है। यह चर्चा ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के 31वें सूक्त के आरम्भिक दो मन्त्रों में ध्यातव्य है। वहाँ यह भी कहा है कि ऐसी स्थिति में ज्येष्ठ नाती को पिता अपने पुत्र के रूप में स्वीकार कर लेता है। और यदि वह पुत्री का पुत्र सम्पूर्ण पितृकर्म करता है तो वही सम्पत्ति का अधिकारी है। दुर्भाग्यवश आज कल के पुत्रों की तरह यदि पुत्र इस दायित्व का पालन नहीं करता तो जो इस दायित्व का वहन करे चाहे वह पुत्री हो या अन्य कोई सम्बन्धी समाज का व्यक्ति वही उसकी सम्पत्ति का अधिकारी होगा, यह वेद की आज्ञा है।

***

नारी जागरण पत्रिका में
प्रकाशित

वेदों में महिलाओं के धार्मिक अधिकार

धर्म के तीन स्कन्ध–

वेदों में महिलाओं के धार्मिक अधिकार के विषय पर कुछ लिखने से पूर्व धर्म का शास्त्रीय स्वरूप क्या है? मैं इस विषय पर थोड़ा प्रकाश डालना चाहूँगी। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार धर्म के तीन स्कन्ध हैं। स्कन्ध का अर्थ होता है कन्धा अथवा शाखा अर्थात् जिसके आधार पर धर्म फैला व टिका हुआ है। वहाँ कहा है–

त्रयो धर्म स्कन्धाः। यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः। तप एव द्वितीयो, ब्रह्मचारी आचार्यकुलवासी तृतीयः॥[1]

अर्थात् यज्ञ, अध्ययन और दान ये तीनों धर्म का प्रथम अर्थात् मुख्य स्कन्ध है। तप यह धर्म का द्वितीय स्कन्ध है तथा आचार्य का अन्तेवासी (शिष्य) बनकर रहना यह धर्म का तीसरा स्कन्ध है। धर्म के इन तीन स्कन्धों का जो अपने जीवन में अनुपालन करता है वह उपनिषद् की भाषा में धार्मिक कहलाने का अधिकारी है। अब प्रश्न है धार्मिकता के इन मुद्दों पर महिलाओं के सन्दर्भ में वेद की क्या आज्ञा है? अपने इस लेख में क्रमशः वेद के प्रमाण से मैं यही सिद्ध करूँगी कि धर्म के इन सभी क्षेत्रों में नारियों के लिये कोई वर्जना वेद में नहीं है अपितु इन सभी विषयों पर उनका पूर्ण अधिकार है।

यज्ञ और नारी– वेद के अनेक मन्त्रों से सिद्ध होता है कि नारी यज्ञ की केतु (पताका) है। यज्ञ की ब्रह्मा, यज्ञ की नेत्री है। उसे यज्ञ करने का पूर्ण अधिकार ही नहीं उसके बिना यज्ञ अपूर्ण है। ऋग्वेद का यह मन्त्र–

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे॥[2]

---

1. छा.उ. 2/23/1
2. ऋ. 1/113/19

इस मन्त्र में उसे **देवानां माता** देवों की माता (निर्माण करने वाली), **यज्ञस्य केतुः** यज्ञ की पताका, **प्रशस्तिकृत्** प्रशंसनीयता को जन्म देने वाली **विश्ववारा** सबके द्वारा वरण किये जाने योग्य कहा गया है तथा उससे प्रार्थना की गई है कि तू हमारे अन्दर ब्रह्मत्व को पैदा करने के लिये हमारे अज्ञान अन्धकार को दूर कर। एक अन्य मन्त्र में भी कहा गया है–तू हमारे यज्ञ को पूर्ण करने वाली है तू हमें इस यज्ञ के माध्यम से सुवीर सन्तान को प्राप्त कराने वाली बन।

तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम्।[1]

अथर्ववेद के इस मन्त्र में यही कहा है। इसी प्रकार कहीं **राका**[2], **सिनीवाली**[3] तो कहीं **कुहू**[4], **अनुमति**[5], **देवपत्नी**[6], **इडा**[7] के माध्यम से उसका बार-बार आवाहन कि वह हमारे इस यज्ञ की रक्षा करे आदि प्रार्थना–

एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम्। भद्रा ह्यस्याः प्रमतिर्बभूव सेमं यज्ञमवतु देवगोपा।।[8]

इसी प्रकार के मन्त्रों से की गई है। वेद में स्त्री को ब्रह्मा कहा है– **स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ**[9] ब्रह्मा यज्ञ का नायक प्रधान ऋत्विज् होता है तथा चारों वेदों का ज्ञाता विद्वान् होता है। नारी से भी यही अपेक्षा है इसलिये उसे स्पष्ट शब्दों में ब्रह्मा कहा गया है।

---

1. अथर्व. 7/20/4
2. अथर्व. 7/48
3. अथर्व. 7/46
4. अथर्व. 7/47,
5. अथर्व. 7/20
6. अथर्व. 7/49,
7. अथर्व. 7/27
8. अथर्व. 7/20/5
9. ऋ. 8/33/19

अध्ययन और नारी– वेद के अनेक मन्त्रों में नारी के लिये विदुषी शब्द का प्रयोग आता है। विदुषी का अर्थ है ज्ञान सम्पन्न और ज्ञान सम्पन्नता शास्त्र के अध्ययन से ही संभव है। वेद का एक मन्त्र है जिसमें उषासानक्ता = उषा और नक्ता जो दिन और रात्रि की देवता हैं उन्हें कहा गया है कि जिस प्रकार विदुषी नारी मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये यज्ञ को प्राप्त कराती है उसी प्रकार ये दोनों देवियाँ प्राणिमात्र के लिये इस अहोरात्र यज्ञ का आवाहन करती हैं–

उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम्।[1]

इस मन्त्र में नारी को जहाँ विदुषी कहा है वहीं उसे यज्ञ को प्राप्त कराने वाली भी कहा है। इसी प्रकार वेद के अनेक मन्त्रों का देवता **सरस्वती**[2] है। सरस्वती विद्या की अधिष्ठात्री देवी का नाम है।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती।।[3]

यह वेद का मन्त्र है, इस मन्त्र में सरस्वती जो कि प्रशंसनीय ज्ञान से युक्त नारी है उसके गुणों का व्याख्यान किया है कि वही सुशिक्षा से युक्त वाणी को प्रेरित करने वाली, लोगों को सुमति प्रदान कर सुमति के द्वारा अनुष्ठेय विषयों का ज्ञापन कराने वाली तथा यज्ञ को धारण करने वाली है। इन मन्त्रों के ऊपर महर्षि देव दयानन्द का हिन्दी संस्कृत में भावार्थ द्रष्टव्य है। भावार्थ इस प्रकार है–

या स्त्रीणां मध्ये विदुषी स्त्री स्यात्सा सर्वाः स्त्रियः सदा सुशिक्षेत् यतः स्त्रीणां मध्ये विद्यावृद्धिः स्यात्।[4] अर्थात् जो स्त्रियों के बीच में विदुषी स्त्री हो वह सब स्त्रियों को सदा सुशिक्षा करे जिससे स्त्रियों में विद्या

1. ऋ. 5/41/7
2. अथर्व. 7/11, 7/68
3. ऋ. 1/3/11
4. यजु. 20/85

की वृद्धि हो। इसके अगले मन्त्र के भाष्य में भी वहाँ लिखा है– **कन्याओं को चाहिये कि ब्रह्मचर्य से विद्या और सुशिक्षा को समग्र ग्रहण करके अपनी बुद्धियों को बढ़ावें**। इन पंक्तियों में महर्षि की पीड़ा को हम समझ सकते हैं।

महर्षि देव दयानन्द के सामने तत्कालीन समाज में **स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम् इति श्रुतिः**[1] अर्थात् स्त्री और शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है तथा **द्वारं किमेकं नरकस्य नारी,** नारी नरक का द्वार है आदि पण्डितों के वचन स्त्रियों को अपमानित करने व उन्हें शिक्षा देने में बाधक थे। उनका उत्तर महर्षि ने इसी प्रकार सैकड़ों वेद मन्त्रों का स्त्रीपरक अर्थ करके दिया और सिद्ध किया। महर्षि देव दयानन्द का सम्पूर्ण यजुर्वेद तथा ऋग्वेद का भाष्य (सातवें मण्डल तक) हिन्दी में उपलब्ध है। अब तो चारों वेदों का हिन्दी भाष्य उनके अनुयायियों **डा0 जयदेव विद्यालंकार, पं0 हरिशरण सिद्धान्तालंकार, पं0 क्षेमकरण दास जी त्रिवेदी** आदि के द्वारा किया गया सप्रमाण उपलब्ध है। वह महिलाओं को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के लिये पठनीय है। इसी प्रकार अनेक मन्त्रों में नारी से प्रार्थना की गई है कि तू हमें देव बना, हमें सुकृत = उत्तम कर्त्तव्य कर्म का उपदेश कर– **देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्।**[2]

दान और नारी– उपरिलिखित प्रमाणों से यदि नारी को यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त है तो वह दान देने की अधिकारिणी भी स्वयं सिद्ध हो जाती है। क्योंकि पाणिनीय व्याकरण से सिद्ध यज्ञ शब्द के तीन अर्थ हैं– **देव पूजा, संगतिकरण** और **दान**। इस प्रकार जो यज्ञ करने का अधिकारी है वह देवपूजन तथा समाज में सबके बीच उठने-बैठने, संगतिकरण करने व दान देने का भी अधिकारी स्वयं बन जाता है।

---

1. यह वाक्य पं. वीरभानुशर्मा मिश्र द्वारा लिखित 'कन्योपनयन निषेध' पुस्तक के पृष्ठ 17 पर उल्लिखित है।
2. यजु. 8/43

वेद में नारी के लिये प्रयुक्त **रेवती, मघोनी, वसुमती** आदि धनपरक तथा दानपरक शब्द इस बात के द्योतक हैं कि वह धन वाली भी है और उसे उस धन को दान करने का पूर्ण अधिकार भी है। वेद में रायः शब्द धन नामों में मिलता है इसलिये रेवती का अर्थ हुआ धनवाली पर कैसा धन? जो कि देने योग्य है, क्योंकि रायः शब्द रा दाने धातु से बनता है इसलिये रायः का अर्थ होता है देने योग्य धन। इसीलिये रेवती का अर्थ हुआ वह नारी जो धनवाली होकर उस धन का सामाजिक कार्यों में उपयोग करती है। **स्वस्ति पथ्ये रेवति**[1] इस मन्त्र में रेवती शब्द से नारी को सम्बोधित किया है कि तू हमारे जीवन के प्रत्येक पथ को प्रशस्त करने के लिये धन का दान करने वाली बन। वेद में गाय को भी **रेवती**[2] कहा गया है और पृथ्वी को भी।

मघोनी का अर्थ भी वेद में धनवाली होता है। क्योंकि मघ शब्द वैदिक शब्दकोश निघण्टु में धन नामों में पढ़ा है। महर्षि यास्क इसकी व्युत्पत्ति करते हुए लिखते हैं यह शब्द दान अर्थ वाले मंह धातु से सिद्ध होता है इसलिये इसका भी अर्थ हुआ देने योग्य धन से सम्पन्न नारी। वैसे तो नारी को लक्ष्मी रूपा ही माना जाता है पर नारी का सबसे बड़ा धन उत्तम प्रजा रूप धन है, जिसके लिये वेद के अनेक मन्त्रों में तू मुझे वीर पराक्रमी सुसंस्कारी सन्तान रूप धन को प्रदान कर, यह कहा है।

तप और नारी– विद्या का अध्ययन बिना दीक्षा और तप के असम्भव है। वह चाहे स्त्री हो या पुरुष सबको करना पड़ेगा। मध्यकाल में लोगों ने नारी को अबला, सुकुमारी जैसे शब्दों से सम्बोधित करके उसे बन्दी बना कर उसकी उपयोगिता को विलासिता के प्रतीक पलंग तक सीमित कर दिया। जबकि ऋग्वेद में एक सूक्त ही है जिसका देवता है **अरण्यानी** अर्थात् जंगल की स्वामिनी। जंगल में आश्रय कौन लेता है? जो तपस्वी होता है। वहाँ मन्त्रों में कहा गया है कि वह निर्भीक होकर जंगल में विचरण करती हुई

---

1. ऋ. 5/51/14
2. ऋ. 10/19/1

जंगल के स्वादु फलों का भक्षण कर साधना करती हुई जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करती है।

न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।
स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं निपद्यते॥[1]

इस मन्त्र में यही कहा है कि वह अरण्यानी = तपस्विनी नारी अरण्य अर्थात् जंगल में रहते हुए हिंसक पशुओं का वध किये बिना सत्य, अहिंसादि यम-नियमों का पालन करती हुई **यथाकामं** अपनी अभीष्ट साधना को प्राप्त करती है।

ब्रह्मचर्य और नारी– बिना ब्रह्मचर्य के वेदाध्ययन असम्भव है। और बिना यज्ञोपवीत-उपनयन संस्कार के दीक्षा, यज्ञाधिकार का कोई महत्त्व नहीं होता इन सब दृष्टियों से ब्रह्मचर्य धारण करना, यज्ञोपवीत पहनना जो स्वयं में एक धार्मिक अधिकार है वैदिक नारी को निःसन्देह प्राप्त है, यह कहा जा सकता है। पुनरपि–

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।[2]

यह मन्त्र भी इसमें स्पष्ट प्रमाण है। इसी के आधार पर सृष्टि के आदिकाल से ही अनेक नारियाँ ब्रह्मचर्य पूर्वक वेदाध्ययन करके ब्रह्मवादिनी ऋषिकायें हुईं।

यह परम्परा सूर्या, सावित्री, गोधा, घोषा विश्ववारा आदि से लेकर गार्गी, सुलभा, विद्योत्तमा तक ही नहीं, वर्त्तमान युग में आचार्या डा0 प्रज्ञा देवी, आचार्या मेधा देवी जी ने क्रियात्मक रूप में पाणिनि कन्या महाविद्यालय की स्थापना करके अनेक विदुषी कन्याओं की परम्परा को तैयार करके स्वयं यज्ञ की ब्रह्मा, वेद का प्रवचन सम्पूर्ण भारतवर्ष में करके इसे पुनः प्रतिष्ठित व सिद्ध करके दिखाया है। आज उनकी शिष्याओं में डा0 प्रियंवदा

---

1. ऋ. 10/146/5
2. अथर्व. 11/5/18

वेदभारती (नजीबाबाद), आचार्या नन्दिता शास्त्री चतुर्वेदा (पाणिनि कन्या महाविद्यालय वाराणसी), एम. सविता वेदरत्न (हैदराबाद), डा० प्रीति विमर्शिनी गया (बिहार), डा० श्रुतकीर्ति वेदरत्न (कानपुर), श्रीमती विनीता वेदरत्न (चण्डीगढ़), डा० ज्योत्स्ना द्विवेदी (मध्यप्रदेश), श्रीमती जाह्नवी भार्गव (बैंगलोर), डा० वसुधा शास्त्री (हैदराबाद), श्रीमती अर्चना शास्त्री (कलकत्ता), डा० प्रतिभा पुरन्धि (जम्मू कश्मीर) आदि अनेक विदुषियों का नामोल्लेख किया जा सकता है जो अपने-अपने क्षेत्र में यत्र-तत्र सर्वत्र सम्पूर्ण कर्मकाण्ड, सोलहों संस्कार कराती हैं, साथ ही वेद पर शोध, प्रवचन, लेख आदि के माध्यम से वेदज्ञान का प्रचार-प्रसार कर ब्रह्मवादिनी ऋषिकाओं की परम्परा को जागृत किये हुए हैं।

इस प्रकार वेदों में महिलाओं के धार्मिक अधिकार, वस्तुतः धर्म क्या है, इसे जान कर ही किया जा सकता है जिसका संक्षिप्त विवेचन मैंने इस लेख में किया है।

***

'नारी जागरण' पत्रिका वाराणसी
अक्टूबर 2010 में प्रकाशित

वेदों में नारी - उषा के झरोखे से

वेदों में नारी इस विषय पर कुछ लिखते हुये सहसा स्मरण हो आते हैं वे बहुत से मन्त्र और प्रसङ्ग, जिनसे कि नारी जाति का स्थान समाज में अत्युच्च ही नहीं सर्वोच्च है, यह स्वयं सिद्ध हो जाता है। वेदों में कहीं वह ब्रह्मा है, कहीं विश्ववारा तो कहीं केतु-राष्ट्र की पताका, तो कहीं मूर्द्धा-समाज की मस्तक, कहीं सरस्वती, मघोनी, पुरन्धि, तो कहीं कुछ। वस्तुतः वेद की नारी क्या-क्या है यह मननीय है। आज विश्व के साहित्य में नारी को जो प्रतिष्ठा वेदों में प्राप्त है वह अन्यत्र दुर्लभ है जो कि साक्षात् ब्रह्म परमेश्वर के द्वारा आदिष्ट व उपदिष्ट होने से पक्षपात की आलोचना से भी परे है।

नारी की महिमा वेदों में साक्षात् तो उपलब्ध होती ही है उपमाओं के द्वारा भी भरी पड़ी है, जो कि 19वीं शताब्दी में नारी जाति की गौरव गरिमा के पुनः प्रतिष्ठापक महर्षि देव दयानन्द सरस्वती के वेद भाष्य को देखने से सुस्पष्ट हो जाती है। उन्होंने अपने वेदभाष्य में दूर्वा (दूब), इष्टका (ईंट), उपजिह्विका (दीमक), मण्डूकी (मेंढकी), विषूचिका (हैजा), आपः (जल) आदि अनेक साधारण शब्दों के भी उपमा के द्वारा जो नारी परक अर्थ प्रदर्शित किए हैं जिसका कुछ विवेचन आचार्या **डॉ. प्रज्ञा देवी जी** की लघु पुस्तिका **"उरुधारा नारी"** में सम्प्राप्य है, वे आधुनिक नारी समाज और हिन्दी साहित्य के लिए अनुपम प्रेरणा के स्रोत हैं। आज नारी शिक्षा क्रान्ति का, नारी जागृति का जो प्रबल सूत्रपात हमारे समाज में हुआ है उसका मूल आधार आर्यसमाज और उसका साहित्य था, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है।

संस्कृत में नारी के लिए एक शब्द का प्रयोग आता है योषा, जिसकी व्युत्पत्ति यु धातु से स प्रत्यय करके की जाती है, तदनुसार योषा शब्द का अर्थ हुआ– **"यौति मिश्रयति सत्यादीनाचारान् अमिश्रयति दूरीकरोति च अज्ञानान्धकारं या सा योषा"** अर्थात् जो सत्याचारादि धर्मयुक्त आचरणों से परिवार को जोड़े तथा अज्ञानादि अन्धकार से उन्हें दूर रखे

उसका नाम है योषा। वस्तुतः यह अर्थ दयानन्द की लेखनी लिख रही है अन्यथा– **यौति मिश्रयति आत्मानं पुरुषेण तथा युष्यते सेव्यते योषति[1] सेवते सेवां करोति वा या सा योषा** अर्थात् जो पुरुष के साथ भोग के लिए स्वयं को जोड़ती है तथा जो पुरुष के द्वारा सेवन की जाती है अथवा जो दूसरों की सेवा के लिए है उनकी सेवा करती है उसका नाम है योषा, यही अर्थ समाज में मान्य था। अस्तु।

मैं यहाँ कुछ और लिखना चाहती हूँ कि वस्तुतः नारी का अपेक्षित सम्पूर्ण व्यक्तित्व इस योषा शब्द में निहित है। कैसे? तो देखिए, मेरी दृष्टि में जो मैंने उषा सूक्तों के अध्ययन से सुस्पष्ट पाया और जो मुझे अच्छा लगा **योषा** शब्द की वह व्युत्पत्ति है– **या + उषा = योषा** अर्थात् जो उषा है वही योषा है। वस्तुतः वेद के अनेक मन्त्रों में उषा के समान योषा और योषा के समान उषा का जो समानाधिकरण प्राप्त होता है वह देखने योग्य है। महर्षि तो अपने वेदभाष्य में जैसे स्पष्ट घोषणा ही करते रहे हैं। वे लिखते हैं–

सैव स्त्री वरा या उषर्वद् वर्त्तते।[2]

अर्थात् वही स्त्री वरण करने योग्य है जो उषा के गुणों से युक्त हो। इसी प्रकार वे इसी सूक्त के अगले मन्त्रों में लिखते हैं–

सैव स्त्री सुखप्रदा या सुहृद्वदाज्ञानुकारिणी सैव उषर्वत् कुलप्रकाशिका भवति।।[3]

तथा– **या (सूनृतावरी) सत्यवाक् प्रकाशिका प्रशंसिता च वर्त्तते सैव स्त्री वरा।**[4]

अर्थात् वही स्त्री सुख देने वाली है जो उषा के समान कुल की प्रकाशिका हो तथा वही स्त्री वरण करने योग्य है जो सूनृतावरी प्रशंसनीय सत्य वाणी का प्रकाश करने वाली हो। एक अन्य मन्त्र के भावार्थ में वे लिखते हैं–

---

1. युष सेवायाम् इति सौत्रो धातुः-अमरकोश
2. ऋ. 4/52/1
3. ऋ. 4/52/3
4. ऋ. 4/51/4

याः स्त्रियः उषर्वद् दुःखध्वंसिकाः सुखजनित्र्यः स्युस्ता एवाऽह्लादिकाः भवेयुः।[1]

अर्थात् जो स्त्रियाँ उषा के समान दुःख का नाश करने वाली (उष दाहे) तथा सुख को उत्पन्न करने वाली हैं वे ही सबको आह्लाद देने वाली होती हैं। एक अन्य मन्त्र में–

व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम्।
ता त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत॥[2]

हे **उषः!** उषा के समान कामना करने योग्य (वश कान्तौ) नारी **हि** क्योंकि तू **रश्मिभिः** अपने ज्ञानरूपी प्रकाश किरणों से **व्युच्छन्ती** अन्धकार को दूर करती हुई **विश्वम्** संसार को **रोचनम्** रुचिपूर्वक **आभासि** प्रकाशित करती है इसलिए **ता त्वाम्** उस तुझको **वसूयवः** बसाने योग्य धन की कामना वाले **कण्वाः** मेधावी लोग **गीर्भिः** वेद शिक्षा युक्त वाणियों से **अहूषत** तेरा आह्वान करते हैं। इस मन्त्र के भावार्थ में महर्षि लिखते हैं–

विद्वद्भिरुषर्गुणवद् वर्त्तमाना स्त्री श्रेष्ठा अस्तीति बोद्धव्यम् सर्वेभ्य उपदेष्टव्यम् च।

अर्थात् विद्वानों को चाहिए कि **उषा**[3] के गुणों के तुल्य स्त्री उत्तम होती है

---

1. ऋ. 4/52/9
2. ऋ. 1/49/4
3. उषा कहते हैं प्रभात वेला को। रात्रि के चतुर्थ प्रहर से प्रारम्भ होकर सूर्योदय से पूर्व तक लालिमायुक्त अवस्था को उषःकाल कहते हैं। इस समय जागरण करने वालों के लिए वेद में **उषर्बुधः** शब्द का प्रयोग आता है।
   महर्षि यास्क उषा शब्द की व्युत्पत्ति– **उषाः कस्मात्? उच्छतीति सत्याः** (निरु 2/6/19) अर्थात् **उछी विवासे** धातु से मानते हैं। जिसका अर्थ है दूर करना, समाप्त करना। निरुक्त के दैवतकाण्ड में कान्त्यर्थक वश धातु से भी इसकी सिद्धि मानी गई है। तद्यथा- **उषा वष्टेः कान्तिकर्मणः** (– वश कान्तौ निरु. 12/6) महर्षि पाणिनि उष दाहे धातु से (**उषः किच्च**, उणादि 4/234) असि प्रत्यय करके उषाः शब्द सिद्ध करते हैं। इस प्रकार **उच्छति विवासयति अन्धकारं दूरीकरोति समापयति, वष्टि कामयते, ओषति दहति वा या सा उषाः** अर्थात् जो अन्धकार को दूर करती है, अविद्यादि अन्धकार को भस्म कर देती है तथा जिसकी सब कामना करते हैं, उसका नाम है उषा।

इस बात को जाने और सबको उपदेश करे। एक अन्य मन्त्र में–

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम्।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः॥[1]

अर्थात् **ये श्रवस्यवः** जो अपना यश चाहने वाले पुरुष **अस्याः आचरणेषु** इस सती स्त्री के धर्मयुक्त आचरणों में **समुद्रे न** समुद्रवत् गम्भीर प्रीति **दध्रिरे** रखते हैं तथा नारी भी उषा, प्रभात वेला के समान **देवी** सबको सुख देने वाली (देवो दानात्) **जीरा**[2] सभी कार्यो में वेगवती निरालस्य होकर **रथानाम्** रथ के समान रमणीय आनन्द देने वाले उन पुरुष के **उच्छात्** अविद्या-दुःख आलस्य प्रमादादि दोषों को दूर कर **नु** शीघ्रता से **उवास** उनके हृदयों में वास करे। इस प्रकार जो पुरुष अपनी पत्नी के प्रति समुद्रवत् गम्भीर प्रीति और विश्वास रखकर उसे उत्तम रमणीय भूषण, आच्छादन तथा सुखदायक यानादि से भ्रमणादि के द्वारा सन्तुष्ट, प्रसन्न रखते हैं वे ही उषा सम नारी के वैभव का उपभोग करते हैं, यह मन्त्र का गूढार्थ है।

यावयद् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सुनृता ईरयन्ती।
सुमंगलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषा श्रेष्ठतमा व्युच्छ॥[3]

उषः! उषा के समान वर्त्तमान हे विदुषी स्त्री! **यावयद् द्वेषाः** जो तू द्वेषयुक्त अप्रीतिकर कर्मों को दूर करने वाली **ऋतपाः** सत्य यज्ञ आदि की रक्षक **ऋतेजाः** सत्य व्यवहार में उत्पन्न अथवा ऋत = यज्ञ के निमित्त प्रादुर्भूत **सुम्नावरी** प्रशंसनीय सुखों को देने वाली **सुमंगली** सुन्दर मंगल कामनाओं से युक्त जिसके लिए सब **"मां गच्छतु"**[4] मुझे प्राप्त हो, ऐसी कामना करते हैं वह तू **सुनृताः** मधुर सत्य वाणियों को **ईरयन्ती** प्रेरित करती हुई **श्रेष्ठतमा** स्वयं श्रेष्ठतम होकर यज्ञादि श्रेष्ठतम कर्मों को करती हुई **देववीतिम्** देवों के

---

1. ऋ. 1/48/3
2. जु वेगे– जोरी च, उणादि.– 2/23
3. ऋ. 1/113/12
4. निरु. 9/1/2

द्वारा चाहने योग्य विशिष्ट रीति नीति को **बिभ्रती** धारण करती हुई **इह अद्य** आज यहाँ **व्युच्छ** हमें सभी दुःखों से दूर कर। इसी सूक्त के 14वें मन्त्र के भावार्थ में महर्षि के स्वप्नों की नारी की एक झलक द्रष्टव्य है। वे लिखते हैं–

जैसे उषा प्रातः समय की वेला दिशाओं में व्याप्त है वैसे कन्या लोग विद्याओं में व्याप्त हों वा जैसे यह उषा अपनी कान्तियों से शोभायमान होकर रमणीय स्वरूप से प्रकाशमान रहती है वैसे ये कन्याजन अपने शील आदि गुण और सुन्दर रूप से प्रकाशमान हों, जैसे यह उषा अन्धकार का निवारण कर प्रकाश को उत्पन्न करती है वैसे ये कन्याजन मूर्खतादि का निवारण कर सुसभ्यता आदि शुभ गुणों से सदा प्रकाशित रहें।

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे॥[1]

इस मन्त्र में नारी को जो देवों की माता, उत्पन्न हुए पुत्र की **अनीकम्** सेना की तरह सजग होकर रक्षा करने वाली यज्ञादि सत्कर्मों की **केतुः** संवाहिका पताका, **बृहती** अपने उदारतादि गुणों से महान् **प्रशस्तिकृद्** दूसरों की प्रशंसा करने वाली अतएव **विश्ववारा** सबके द्वारा वरण करने योग्य है उससे यह अपेक्षा की गई है कि वह **ब्रह्मणे** परमेश्वर वा उसके दिये बृहत् वेद ज्ञान से स्वयं प्रकाशित हो तथा परिवार वा समाज के लोगों को भी उस आस्तिक वैदिक विचारधारा में **व्युच्छ** स्थिर करे, दृढ़ बनाये तथा सबके हृदयों में परस्पर प्रेम, सद्भाव व स्नेह धारा को **आजनय** उत्पन्न करने वाली हो। इस मन्त्र के भावार्थ में महर्षि लिखते हैं–

क्योंकि स्त्री-सम्बन्ध से उत्पन्न हुए दुःख के तुल्य इस संसार में कुछ भी बड़ा कष्ट नहीं है, अतः पुरुष सुलक्षणा स्त्री की परीक्षा करके उसका पाणिग्रहण करे और स्त्री को भी योग्य है कि हृदय को अतीव प्रिय प्रशंसित रूप-गुण वाले पुरुष का ही पाणिग्रहण करे।

1. ऋ 1/113/19

यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रतिभद्रा अदृक्षत।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम्॥[1]

संसार में **रुशन्तः** (जनाः) दुष्ट, हिंसक, चौरादि जन **यस्याः** जिस उषा की **भद्राः अर्चयः** कल्याणकारी दीप्तियों को **प्रति अदृक्षत** प्रत्यक्ष करते हैं (और प्रभात वेला के आते ही अपनी दुष्ट प्रवृत्तियों से विरत होकर छुपने का प्रयास करते हैं) **सा उषा नः** वह उषा हमें जिस प्रकार **विश्ववारम्** सबके द्वारा वरणीय, आच्छादनीय, **सुपेशसम्** सुन्दर रूपयुक्त **सुग्म्यम्** सुखपूर्वक सहजता से प्राप्त होने योग्य **रयिम्** धन को देती है उसी प्रकार ऐ नारी! तेरी भद्र दीप्ति को प्रत्यक्ष कर दुष्ट जन अपनी दुष्प्रवृत्तियों को छोड़कर तेरे **सुग्म्यम्** सुख को प्राप्त कराने योग्य मातृत्व रूप को प्राप्त करें तथा तू **विश्ववारम्** सबके द्वारा वरणीय आच्छादनीय प्यार करने योग्य **सुपेशसम्** सुन्दर रूपवान् **रयिम्** पुत्ररूपी धन को **ददातु** देने वाली हो। एक अन्य मन्त्र में–

वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवती॥[2]

या जो **व्यर्थिनः** विविध अर्थियों, चाहने वालों के **पदम्** प्राप्तव्य को **ओदती** आर्द्रता पूर्वक शान्ति से **विवेति** यथायोग्य प्राप्त कराती है तथा लोगों के अन्दर **समनम्** सम्यक् प्राण, जीवन-धारण करने की क्षमता को **सृजति** उत्पन्न करती है। ऐसी **वाजिनीवती** विविध क्रियाओं में तत्पर **नकिः**[3] शब्द न करती हुई– चुपचाप रहने वाली कर्त्तव्यपरायण नारी की **व्युष्टौ** कमनीय गोद में **वयो न** पक्षी के समान चिरौंटे बच्चे **पप्तिवांसः** बारबार गिरते हुए उछल कूद करते **आसते** रहते हैं। एक मन्त्र में उषा के समान गुणवाली नारी

1. ऋ. 1/48/13
2. ऋ. 1/48/6
3. न कायति (कै शब्दे) इति नकिः।

चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय[1] घर की चिकित्सा करने वाली **क्षयो निवासे**[2] वैद्या है, यह भी कहा है। इस मन्त्र के भावार्थ में महर्षि लिखते हैं–

या उषर्गुणा स्त्री चन्द्रगुणश्च पुमान् भवेत् तयोर्विवाहे जाते सततं सुखं भवति। *अर्थात् जहाँ उषा गुण वाली स्त्री तथा चन्द्र गुण वाले पुरुष का परस्पर विवाह होता है वहाँ सदा सुख होता है।*

उषा की विशेषता है कि वह सारे संसार के जागने से पहले **"पूर्वा विश्वस्मात् भुवनादबोधि"**[3] जागृत होती है, इसीलिये मन्त्रों में– **उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा**[4] मानो वह सारे संसार को सबसे पहले उठकर निगल लेती है, सबको अपने प्रकाशमय उज्ज्वल रंग में रंग देती है, कहा है। **"योषेव भद्रा निरिणीते अप्सः"**[5] इस मन्त्र में योषा अर्थात् स्त्री के समान कल्याणकारी रूप को प्राप्त करने वाली है। उषा, यह कहा है। इसी प्रकार कई मन्त्रों में– **"कन्येव तन्वा शाशदाना"**[6] कन्या के समान कमनीय रूप का विस्तार करने वाली है उषा, कहा है। तथा–

"आ घा योषेव सूनरी उषा याति प्रभुञ्जती"[7]

अर्थात् **सूनरी** अच्छी तरह नेतृत्व करने वाली विदुषी **योषा इव** स्त्री के समान **प्रभुञ्जती** लोगों का पालन करती हुई **उषा आयाति** उषा आती है। इसी प्रकार– **उषो रुरुचे युवतिर्न योषा**[8] अर्थात् जिस प्रकार **युवतिः योषा** जवान स्त्री अपने पति के सामीप्य को प्राप्त कर सुशोभित होती है तद्वत् उषा

---

1. ऋ. 1/123/1
2. अष्टा. 6/1/195
3. ऋ. 1/123/2
4. ऋ. 1/113/4
5. ऋ. 5/80/6
6. ऋ. 1/123/10
7. ऋ. 1/48/5
8. ऋ. 7/77/1

सूर्य के सामीप्य से प्रदीप्त होती है। यही नहीं अनेक मन्त्रों में– **जायेव पत्य उशती सुवासाः**[1] अर्थात् जिस प्रकार पति की कामना करती हुई स्त्री सुन्दर वस्त्रों को धारण कर सुशोभित होती है तद्वत् उषा, यह कहा है जिनसे उषा और योषा का परस्पर उपमानोपमेय भाव लक्षित होता है। एक मन्त्र में उषा नारी अपना पथ स्वयं निर्माण करती है यह कहा है–

पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति।[2]

जिस प्रकार उषा अपने पथ का स्वयं निर्माण करती है उसी प्रकार नारी **सुविताय** अपने तथा संसार के ऐश्वर्य के लिए (षू प्रसवैश्वर्ययोः) **पथो रदन्ती** स्वयं पथ को खोदती हुई **पुरुष्टुता** बहुतों से प्रशंसित तथा **विश्ववारा** सबके द्वारा वरणीय होकर **विभाति** देदीप्यमान होती है। इसी प्रकार–

ऋतस्य रश्मिम् अनुयच्छमाना भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि।[3]

अर्थात् **ऋतस्य रश्मिम्** सत्य की अथवा यज्ञादि सत्कर्म की डोर को, रस्सी को, **अनुयच्छमाना** पकड़े हुए ऐ नारी! तू **भद्रं भद्रं क्रतुम्** अत्यन्त कल्याणकारी बुद्धि तथा तदनुकूल कर्म को **अस्मासु धेहि** हमारे अन्तःकरण में, हमारी विचार शक्ति, चिन्तन शैली में धारण करा। इस मन्त्र में उषा शब्द का अर्थ करते हुए महर्षि लिखते हैं–***हे उषः! प्रातः समय की वेला-सी अलबेली स्त्री!*** *यह पढ़कर मन उछल गया। एक मन्त्र में*–***उषासम नारी के साथ-साथ पुरुष का सत्य संकल्प गृहस्थ धर्म का रक्षक होता है,*** *यह कहा है।*

गूढं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम्।[4]

अर्थात् जो **सत्यमन्त्राः** सत्य संकल्प, विचार वाले पुरुष केवल प्रेम-

1. ऋ. 1/124/7
2. ऋ. 5/80/3
3. ऋ. 1/123/13
4. ऋ. 7/76/4

वासना के वशीभूत होकर नहीं अपितु महान् गृहस्थ धर्म को चलाने के लिए **उषासम्** उषा स्वरूप कन्या को **अन्वविन्दन्** प्राप्त करते हैं वे **पितरः** पालक-रक्षक कहे जाते हैं तथा वे ही **गूढं ज्योतिः** परिवार की उस गूढ ज्योति को प्राप्त करते हैं जिससे कि परिवार कभी छिन्न-भिन्न नहीं होते।

अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम्॥[1]

हे **उषासः** प्रभात वेला के तुल्य **स्तोम्याः** स्तुति करने योग्य **देवीः** दिव्य विद्या गुणवाली पण्डिताओ! तुम **ब्रह्मणा** वेद ज्ञान से **उशतीः** कामना और कान्ति को प्राप्त होती हुई **मे** मेरे लिए विद्याओं की **अस्तोढ्वम्** स्तुति प्रशंसा करो और **अवीवृधध्वम्** हम लोगों की वृद्धि कराओ तथा **युष्माकम् अवसा** तुम्हारी हर प्रकार की रक्षा सहायता से ही हम **सहस्रिणं शतिनं च** जिनमें सहस्रों गुण विद्यमान हैं, जो सैकड़ों प्रकार की विद्याओं से युक्त हैं, ऐसे **वाजं सनेम** अङ्ग-उपाङ्ग उपनिषदादि सहित वेदादि शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करें। इस प्रकार नारियाँ वेदादि ज्ञान को प्राप्त कराने वाली उसकी रक्षिका हैं, यह द्योतित होता है।

एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत् सूर्यं यज्ञमग्निम्॥[2]

एषा स्या उषा यह वह उषा जो **नव्यमायुर्दधाना** नवीन जीवन प्रदान करती हुई अथवा नव्य स्तवनीय (णु स्तुतौ) जीवन को धारण करती हुई, **गूढ्वी तमः** गहरे शोकादि अन्धकार को **ज्योतिषा अबोधि** सद्विद्या के प्रकाश से दूर कर, **अह्रयाणा** किसी प्रकार लज्जा न करती हुई सबके **अग्रम् एति** आगे-आगे चलती है तथा **सूर्यम्** सूर्यसम अपने पति को साथ लेकर **यज्ञम् अग्निम्** यज्ञाग्नि को, **प्राचिकितत्** प्रज्वलित करती है ऐसी नारी

1. ऋ. 1/124/13
2. ऋ. 7/80/2

नववधू सबके द्वारा आदरणीय है। इन मन्त्रों में परमेश्वर ने नारियों के लिए क्या-क्या नहीं कह दिया– वह यज्ञ करे, स्वयं जागृत हो, लोगों को जगाये, संसार के अन्धकार को दूर करे, अपने पथ का स्वयं निर्माण करे, मौनभाव से प्रसन्नतापूर्वक बच्चों का निर्माण करे, विद्या की वृद्धि में सहयोग करे आदि आदि। इतना ही नहीं, एक अन्य मन्त्र में–

वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम्।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना॥[1]

अर्थात् जिस प्रकार सूर्य की स्त्री **उषा** प्रभात वेला **वह्निभिः गृणाना** यज्ञाग्नियों से स्तुति की जाती हुई, **मघोनी** धन वाली, **जरयन्ती** अन्धकार का नाश करती हुई, **ऋषिष्टुता** ऋषियों के द्वारा स्तवन की गई, **वाजिनीवती** ज्ञान बलादि से युक्त करने वाली होती है उसी प्रकार **सूर्यस्य योषा** सूर्यसम तेजस्वी विद्वान् पुरुष की पत्नी **ऋषिष्टुता** ऋषियों, वेदज्ञ विद्वानों द्वारा सुशिक्षा को प्राप्त हुई, **वह्निभिः गृणाना** यज्ञाग्नियों से प्रभातवेला का स्वागत स्तवन करती हुई संसार के अन्धकार को दूर करती है तथा अनेक ज्ञान, बल, धनादि से युक्त होकर, **राय ईशे वसूनाम्** बसाने योग्य (स्थायी) धनों की स्वामिनी होती है ऐसी **चित्रामघा** चायनीय पूजनीय मधुरता सच्चरित्रतादि मघ = धनों से युक्त नारी ही सबके द्वारा सेवनीय है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि जिस प्रकार नारी से, वह उषा के समान गुण वाली हो यह अपेक्षा की गई है उसी प्रकार पुरुष से भी, वह सूर्यसम तेजस्वी हो, यह अपेक्षा की गयी है। एक मन्त्र में तो पुरुष को सूर्य ही नहीं उषा के समान गुणों का विस्तार करने के लिए कहा गया है–

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव।[2]

अर्थात् **हे इन्द्र! सूर्य! यत्** जो तुम **उषा इव** उषा के समान **रोदसी**

1. ऋ. 7/75/5
2. ऋ. 10/134/1

द्यौलोक और पृथिवी लोक में **आपप्राथ** विस्तार को प्राप्त हो रहे हो, तद्वत् सूर्यसम पुरुष भी अपने उत्तम ज्ञान और कर्म के साथ-साथ उषा के समान दिव्य मधुर गुणों को धारण कर महान् यश का विस्तार करे, कहा है।[1] एक अन्य मन्त्र में–

जैसे उषा **उभौ लोकौ पृणती** दोनों लोकों को सुख से पूर्ण करती हुई **पित्रोरुपस्थे वर्त्तमाना** अपने माता-पिता के समान भूमि और सूर्यमण्डल की गोद में वर्त्तमान **विवरं वरीयः व्युप्रथते** दुःखों से पार होने योग्य श्रेष्ठ गुणों का विस्तार करती है तद्वत् कन्यायें अपने शुभ ज्ञान गुण के विस्तार से दोनों पितृलोक तथा पतिलोक को सदा सुखी रखें, यह कहा है।[2] एक मन्त्र के भावार्थ में महर्षि लिखते हैं–

"जो स्त्रियाँ प्रभातवेला के समान अपने पति आदि को सूर्योदय से पूर्व जगाती, गृह और बाहर के मार्गों को साफ करती, **आगच्छतां पत्यादीनां कृताञ्जलयोऽग्रे तिष्ठन्ति** आते हुये पतियों के आगे हाथ जोड़ कर खड़ी होती और सब काल में विज्ञान को देती हैं, **ता एव देशकुलभूषणानि भवन्ति** वे ही देश और कुल को शोभित करने वाली होती हैं।"

इस भावार्थ को पढ़कर मैं तो हैरान हो गई! सोचने लगी क्यों? क्यों वह अपने पति को जगाए फिर उनके आगे हाथ जोड़कर खड़ी रहे? ऐसी अपेक्षा एक विदुषी स्त्री से क्यों? क्या उसका वैदुष्य इसी के लिए है? क्या यह नारियों के प्रति महर्षि का परम्परावादी दृष्टिकोण नहीं है? फिर क्षणभर बाद ऐसी नारी की कल्पना करके सचमुच हृदय में जिस अविरल सुख-शान्ति व सन्तोष की धारा प्रवाहित हुई उससे हृदय आह्लाद से भर गया। वस्तुतः वह घर क्या स्वर्ग नहीं है जिस घर की विदुषी देवियाँ **स्मयमाना** मन्द-मधुर मुस्कान लिए विनम्रता-शालीनता-कुलीनता की चादर ओढ़े शान्त निर्मल,

1. ऋ. 1/124/5
2. ऋ. 5/80/2

सहिष्णु स्वभाव की हों? आज विदुषी नारियों के अन्दर इसी का अभाव तो दीखता है वस्तुतः ये ही नारी के आभूषण हैं।

इस सम्बन्ध में मैं तो यही कहूँगी कि नारियाँ एक बार उषःकाल की कल्पना कर लें, फिर स्वयं को निहार लें, फिर महर्षि के स्वप्नों की नारी स्वयं साकार हो जाएगी। कितनी शान्त, कितनी दिव्य, कितनी सुखदायिनी वह वेला है और वह भी सबके लिए, चाहे कोई दुष्ट हो, पापी हो, उसकी दुष्ट भावना, दुर्वासना तो उसके पवित्र शील और उसके वात्सल्य रूप का सामना कर स्वयं नष्ट हो जाएगी। एक समय था जब पाँच वर्ष की कन्या को भी मातृशक्ति मानकर महर्षि ने नमन किया था। किसी भी नारी को माता जी या बहिन जी कहना हमारी संस्कृति का एक सामान्य शिष्टाचार था, पर आज पचास-पचपन वर्ष की नारियाँ भी स्वयं को किसी के द्वारा माता जी कहने पर बगावत कर उठती हैं। अभी कुछ दिनों पूर्व कानपुर स्टेशन की एक घटना मैं पढ़ रही थी जिसमें महिला प्रसाधन कक्ष के 50, 55 वर्ष की एक सेविका को किसी नवयुवक द्वारा 'माताजी' कहे जाने पर वह भड़क उठी– "क्या मैं तुम्हारे बाप की मेहर (स्त्री) लगती हूँ? तुम मुझे मैडम कह सकते थे" आदि आदि, और उसी के साथ अनेक टीप-टाप युवतियाँ भी इसी बहस में उलझ गयीं जिससे उनकी ट्रेन भी छूट गयी। ये प्रभाव है आज हमारी मातृप्रधान, वन्दे मातरम् संस्कृति पर हावी होती पाश्चात्य संस्कृति का, अस्तु। आज आवश्यकता है फिर से संगठित होकर चिन्तन-मनन करने की, जिससे नारियाँ पुनः अपनी अस्मिता को, अपने गौरव को अपनी पहचान को स्थापित कर सकें तथा समाज को नैतिक मूल्यों का पाठ पढ़ा सकें।

अन्त में उषा के लिये प्रयुक्त कुछ ऐसे शब्दों की सूची, जिनका प्रयोग कन्याओं के नाम रखने के लिये किया जा सकता है, मैं दे रही हूँ।

भास्वती (प्रकाश वाली) दास्वती (दानशील)

ओदती (आर्द्र करने वाली) रेवती (धन वाली)

सुभगा (सौभाग्यवती)	सुदंसा (उत्तम कर्म वाली)
कचाना (दीप्तिमती)	रोचना (सुन्दर)
शुभ्रा (शोभमान)	शुक्रा (उज्ज्वल)
विभावरी (प्रकाश से युक्त)	ऋतावरी (सत्यवती)
ऋतपा (सत्य की रक्षक)	ऋतेजा (यज्ञ सत्यादि धर्म में प्रसिद्ध)
विश्ववारा (सबके द्वारा वरणीय)	सर्ववीरा (सबसे बढ़कर)
ईशाना (ऐश्वर्य से युक्त)	ईशा (ऐश्वर्य सम्पन्न)
श्वेत्या (दीप्ति से युक्त)	देवशिष्टा (दिव्यता से युक्त)
मघोनी (धन वाली)	वाजिनी (ज्ञान बल धन वाली)
प्रथमा (विस्तार वाली)	प्रतीची (प्रत्यक्ष करने वाली)
सुम्नावरी (प्रशंसनीय सुखों वाली)	सुमंगली (मंगल करने वाली)
चित्रा (अद्भुत विद्या वाली)	जीरा (वेगवती)
विभाती (दीप्ति से युक्त)	बृहती (महान्)
सुजाता (उत्तम सन्तान वाली)	विश्वतुरा (शीघ्रता करने वाली)
चित्रामघा (पूज्य धनों की स्वामिनी)	सुप्रतीका (प्राप्त कराने वाली)
सूनरी (अच्छा नेतृत्व करने वाली)	अर्जुनी (प्रयत्नशील)
चन्द्ररथा (चन्द्रमा के समान रमणीय)	सूनृता (सुन्दर वाणी)
पुराणी (सदा नवीन)	पुरन्धि (उत्तम गुणों को धारण करने वाली)
अरुषी (दीप्तिमती)	गोमती (स्वामिनी)

***

अक्टूबर 2005 अग्निदूत
(छत्तीसगढ़ का मुखपत्र) में प्रकाशित

कन्या विश्वरूपा

नवरात्र का प्रथम दिन था, स्वाध्याय कर रही थी। इसी बीच मन्त्र में **"कन्यानां विश्वरूपाणां"** यह पद देखकर दिमाग ठनका। सचमुच चाहे नव-दुर्गा हों चाहे नव-गौरी, सब कमनीय कन्याओं[1] के ही तो रूप हैं, तभी तो आज भी लोक में नवमी के दिन नौ कन्याओं का ही पूजन होता है, उन्हें खिलाया जाता है और भेंट दी जाती है। आइये देखते हैं, वेद इन कन्याओं के विषय में क्या कहता है–

यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम्।
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभाय ओषधे।।[2]

यह मन्त्र अथर्ववेद का है। इसमें कन्याओं की विश्वरूपता, उनकी आन्तरिक पवित्रता तथा उनके अन्दर-बाहर की एकरूपता का वर्णन बड़े सरल शब्दों में किया गया है। मन्त्र में ओषधे! यह सम्बोधन है। ओषधि का अर्थ रोग-निवारक द्रव्य भी हो सकता है किन्तु यहाँ प्रकरण के अनुसार **ओषं दाहं** (उष दाहे) **सन्तापं धयति पिबतीति ओषधिः** अर्थात् जो नारी के मानसिक क्लेश को (सन्ताप को) पी लेता है उसे दुःखी नहीं करता है, ऐसा जो ओषधि स्वरूप पुरुष है पति वही कहा जायेगा। इस प्रकार मन्त्रार्थ होगा–

हे **ओषधे!** ओषधिरूप पति! तू **विश्वरूपाणां कन्यानां मनो गृभाय** विश्वरूप वाली कन्याओं के मन को ग्रहण कर। क्योंकि उनका **यदन्तरम्** जो अन्दर है **तद् बाह्यम्** वही बाहर है तथा **यद् बाह्यम्** जो बाहर है **तद् अन्तरम्** वही अन्दर है अर्थात् उनका अन्दर-बाहर एक समान है। यहाँ कन्याओं की विश्वरूपता कही गई है अर्थात् कन्यायें कुमारावस्था में ही विवाह से पूर्व तक विविध विद्या कला कौशलादि सद्गुणों से सुभूषित होकर विश्वरूपता को धारण करती हैं।

---

1. **कन्या कमनीया भवति।** (निरु. 4/2/18)
2. अथर्व. 2/30/4

इस मन्त्र से कई बातें द्योतित होती हैं, **प्रथम–** महान् आत्मायें ही कन्याओं के रूप में जन्म लेती हैं। क्योंकि महात्मा का लक्षण ही यही है– जो मन वाणी कर्म से एक हो। **मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।** और इसके विपरीत **मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम्।** अर्थात् जो मन में कुछ सोचे वाणी से कुछ बोले तथा आचरण उसके विपरीत करे उसे दुरात्मा दुष्टात्मा कहते हैं।

द्वितीय– कन्यायें विश्वरूपा होती हैं। वस्तुतः संसार में कन्यायें विभिन्न रूपों को धारण करती हैं, यह कहना तो सामान्य बात है क्योंकि सभी जानते हैं कि एक कन्या बहिन बेटी पत्नी माता के रूप में बिल्कुल अलग ही पहचान रखती है। पर यहाँ इतना ही नहीं वह विश्वरूपा है अर्थात् समग्र है, पूर्ण है यह कहा गया है। वही ज्ञान, बल, धन की अधिष्ठात्री है। सरस्वती के रूप में वह जहाँ विद्या की अधिष्ठात्री है तो लक्ष्मी के रूप में धन-धान्य की। यदि वह अपनी कोमलता के कारण ममतामयी जगज्जननी वात्सल्यरूपा मातृस्वरूपा है तो दुर्गा के रूप में ओज-बल-तेज से परिपूर्ण, संसार की संहारकर्त्री, प्रलय स्वरूपा भी है। इसीलिए वेद के एक अन्य मन्त्र में कहा है–

अवीरामिव मामयं शरारुः अभिमन्यते।
उताहमस्मि वीरिणी इन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥[1]

अर्थात् **अयं शरारुः** यह शरारती हिंसक (शॄहिंसायाम्+आरु) पुरुष समाज **माम्** मुझ नारी को **अवीरामिव** वीरता से रहित अबला के समान **अभिमन्यते** समझता है, स्वयं पर अभिमान करता है **उत अहम्** जबकि मैं **वीरिणी** वीरों की जननी, वीरत्व-सम्पन्न हूँ, **इन्द्रपत्नी** स्वयं इन्द्र रूप ऐश्वर्यसम्पन्न परम प्रभु ने मेरा हाथ पकड़ा हुआ है जो कि **विश्वस्मात् उत्तरः** संसार के सब ऐश्वर्यों से बढ़कर है तथा **मरुत्सखा** वेगवान् प्राणों की शक्ति[2] ही मेरा मित्र है, मैंने प्राणायाम के द्वारा स्वयं को बलवान् बनाया हुआ है। तभी–

---

1. ऋ. 10/86/9
2. प्राणा वै मरुतः ऐ.ब्रा. 12/5/16

मम पुत्राः शत्रुहणः अथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः॥[1]

अर्थात् मेरे पुत्र संसार के शत्रुओं का हनन करने वाले, आत्मजयी, आत्मनिष्ठ जितेन्द्रिय वीर पुरुष हैं, और मेरी दुहिता (बेटी) विराट् विविध गुणों से विद्या से सुभूषित है और मैं स्वयं **संजया** भली-भाँति सबके हृदय में विराजमान, सबके हृदय की साम्राज्ञी, सबके दिल को जीतने वाली हूँ। **पत्यौ मे** पति के हृदय में मेरे प्रति **उत्तमः श्लोकः** उत्तम प्रशंसा के भाव हैं। इसीलिए–

सूर्यो देवीम् उषसं रोचमानां मर्यो न योषाम् अभ्येति पश्चात्॥[2]

यहाँ प्रकरण सूर्य का चल रहा है कि– **सूर्यः रोचमानाम् उषसं देवीं पश्चात् अभ्येति** सूर्य चमकती हुई उषा देवी के आने के पश्चात् आता है, उदित होता है। पर कैसे? इसे बताने के लिए यहाँ मन्त्र में जो उदाहरण दिया है वह कमाल का है कि **न** जैसे **मर्यः** मरणधर्मा मनुष्य **योषाम् अभ्येति पश्चात्** स्त्री को अभिमुख (सम्मुख) करके उसके पीछे चलता है। यहाँ विवाह के समय प्रदक्षिणा करते हुए वर-वधू का वह दृश्य आँखों के सामने घूम जाता है जब संस्कार कराने वाले पण्डित जी वधू को आगे करके वर को चलने के लिए कहते हैं या सप्तपदी में पत्नी को बराबर में रखकर साथ-साथ चलने को कहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज में नारियाँ वह प्रकाश स्तम्भ हैं, जिनके पीछे पुरुषों को अनुवर्त्तन करना चाहिए। वस्तुतः किसी भी क्षेत्र में नारियाँ समाज को जो विवेकपूर्ण निःस्वार्थ कर्त्तव्यनिष्ठ अनुशासित गति दे सकती हैं, वह पुरुष समाज के द्वारा प्रायः असम्भव है। उसका तो हर कदम प्रतिदान चाहता है। स्त्रीसमाज को पुरुष के इस रूप से सतत सावधान रहना चाहिये। गृहस्थ जीवन में भी नारी का विवेक ही सम्पूर्ण परिवार के लिए आपसी

1. ऋ. 10/159/3
2. ऋ. 1/115/2

सद्व्यवहार के लिए एक दीपक के समान होता है। ऐसी नारियाँ ही विश्ववारा, संसार के द्वारा वरण करने योग्य, देवों की माता कही जाती हैं।

माता देवानाम् अदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे॥[1]

यह उषा देवता वाले सूक्त का मन्त्र है। इस मन्त्र का भाष्य करते हुए महर्षि लिखते हैं– हे **विश्ववारे**! समस्त कल्याण को स्वीकार करने, प्राप्त कराने वाली, सबके द्वारा वरण करने योग्य नारी! तू **देवानां माता** विद्वानों की जननी **अदितेः** उत्पन्न हुए बालक की[2] **अनीकम्** सेना के समान रक्षा करने वाली **यज्ञस्य**, यज्ञ की **केतुः** ज्ञापन कराने वाली पताका के समान प्रसिद्ध **बृहती** अत्यन्त सुख को बढ़ाने वाली **प्रशस्तिकृत्** प्रशंसा करने वाली, **ब्रह्मणे** वेदविद्या व परमेश्वर के ज्ञान के लिए उषःकालीन प्रभातवेला के समान **विभाहि** प्रकाशित हो और **नःजने** हमारे कुटुम्बी जनों में प्रीति को **आजनय** अच्छे प्रकार उत्पन्न कर और **नः** हमको सुख में, **व्युच्छ** स्थिर कर। एक अन्य मन्त्र में–

सूयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम॥[3]

अर्थात् हे नारी! तू **सूयवसात्** अच्छे यव आदि सात्त्विक अन्न को खाकर **भगवती हि भूयाः** ऐश्वर्य-सम्पन्न हो जा जिससे **वयम्** हम सब **भगवन्तः स्याम** भगवान् हो सकें। तात्पर्य निकला, पुरुष भगवान्-ऐश्वर्य सम्पन्न तभी बनते हैं जब नारियाँ अर्थात् मातायें सात्विक आहार-विहार-सम्पन्न भगवती होती हैं। और यदि वे संस्कारहीन, विद्याविहीन हुईं तो सन्तानें क्या होंगी समाज क्या होगा आप सोच सकते हैं। वर्त्तमान समाज इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। **स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ**[4] यहाँ स्त्री को ब्रह्मा चारों वेदों की ज्ञाता यज्ञ

1. ऋ. 1/113/19
2. अदितिर्जातम् ऋ. 1/89/10 इति मन्त्रप्रामाण्यात्।
3. ऋ. 1/164/40
4. ऋ. 8/33/19

की, मुख्य अधिष्ठाता कहा गया है। इससे पूर्व भी **यज्ञस्य केतुः** यज्ञ की पताका नारी को कहा था। इस प्रकार वेदों की झाँकी वेदों के प्रामाण्य से नारी का सम्मान-नारी की प्रतिष्ठा कितनी ऊँची है, हम समझ सकते हैं। फिर भी यह कहना कि नारियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है, यज्ञ करने का अधिकार नहीं है तो क्या ये वेद मन्त्र पुरुषों के मानसिक जप के लिए परमेश्वर ने बनाये हैं? क्या इन मन्त्रों पर अमल करने की आवश्यकता नहीं है? क्या पुरुषों द्वारा इनका सस्वर जटापाठ, घनपाठ कर लिये जाने मात्र से संसार की उन्नति हो जायेगी? वस्तुतः इन मन्त्रों में नारियों के प्रति ऐसी उदात्त अभिव्यक्ति को देखकर ही सम्भवतः पुरुषों ने नारियों पर गम्भीर आक्रमण किये और उन पर ऐसे शास्त्रीय प्रतिबन्ध लगाने आरम्भ किये, यही कहा जा सकता है।

वस्तुतः संसार की हर नारी जिसका ज्ञान प्रशंसनीय है वह **सरस्वती**[1] तथा जो वेदवाणी में रमण कर रही है वह **गौरी**[2] है। जो दुष्टों का विनाश करने के लिये वीर पुत्रों को जन्म देती है, जिसने जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करने का साहस अपने बच्चों में भरा है, जो समय आने पर स्वयं खड्ग कृपाण लेकर शत्रुओं को पराभूत करने की सामर्थ्य रखती है वह दुर्गा ही कही जायेगी। इसी प्रकार परिवार में हर वह देवी जो जितनी आय है उतने में ही बड़ी कुशलता से मितव्ययिता पूर्वक सबकी प्राथमिकताओं को, आवश्यकताओं को देखते हुए विलासिता से दूर सबका यथोचित पालन व पोषण करती है, उसी का नाम लक्ष्मी है, वही अन्नपूर्णा है। क्योंकि वेद में यही कहा गया है–

प्रपतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत।
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम्।।[3]

---

1. सरः प्रशस्तं ज्ञानं विद्यते यस्याः सा सरस्वती
2. गवि वाचि रमते या सा गौरी
3. अथर्व. 7/115/1-4

अर्थात् पुरुषार्थ से हीन असत्य और अन्याय से प्राप्त हे **पापि लक्ष्मि!** तू **इतः प्रपत** यहाँ से दूर चली जा। **इतः नश्य** इस सदाचारी के घर से विनाश को प्राप्त हो जा तथा **अमुतः प्रपत** वहाँ से जहाँ से तू कमा कर लाई गई है वहाँ से भी दूर भाग जा, किंच जो पुण्या लक्ष्मी है, जिससे घर में पुण्य फलीभूत होता है तू उसी रूप में यहाँ मेरे घर पर रमण कर। इसी सूक्त में कहा– **एकशतं लक्ष्म्यः** लक्ष्मी के तो सैकड़ों प्रकार और सैकड़ों रूप हैं, यह संसार ही **हिरण्मयेन पात्रेण**[1] सुनहरे ढक्कन से आच्छादित है। इसलिए **या मा लक्ष्मीः पतयालूः** जो लक्ष्मी मुझे नीचे गिराने वाली है, **अजुष्टा** असेवनीय है तथा **अभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्**[2] अर्थात् वृक्ष पर लता के समान मुझ पर आ चढ़ी है, मुझे सुखा रही है (स्कन्दिर् गतिशोषणयोः) **सवितस्ताम् इतो धाः** हे सवितः, उसे तू मुझसे अन्यत्र कहीं और स्थापित कर दे। इस प्रकार लक्ष्मी के भी दो रूप हैं– पुण्या तथा पापिनी, जिसमें विवेक पूर्वक चलने पर ही पुण्या लक्ष्मी को घर में रखा जा सकता है। वस्तुतः आज समाज में उत्तम चरित्र, उत्तम बल-पराक्रम, उत्तम विद्या सुशिक्षा की परम आवश्यकता है। वेद के शब्दों में–

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः।
त्वे इषः सन्दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः॥[3]

अर्थात् हे **जातवेदः!** बुद्धि और धन से युक्त पुत्र! तुझे **भूरिवर्पसः** बहुत प्रशंसा के योग्य रूपों से युक्त नारियाँ, **चित्रोतयः** माता के रूप में आश्चर्य करने योग्य सुरक्षा को प्रदान करने वाली, **वामजाताः** प्रशंसनीय कुल व कर्म से प्रसिद्ध विद्याप्रिय अध्यापिका माता आदि विदुषी स्त्रियाँ **त्वे** तुझमें **इषः** अन्नों को, ज्ञान बल तथा धन को, **संदधुः** उत्तमता से धारण कराती हैं। इसलिए तू ऐसी माताओं से शिक्षित होकर, **सुशस्तिभिः** उत्तम

---

1. यजु. 40/17
2. अथर्व. 7/115/2
3. यजु. 12/108

प्रशंसा युक्त कर्मों के द्वारा समाज में, **धीतिभिः हितः** अंगुलियों से गिना गया,[1] **ऊर्जः नपात्** धर्मयुक्त पराक्रम को न गिराने वाला होकर, **मन्दस्व** आनन्द कर। इस प्रकार मन्त्र के अनुसार समाज तथा राष्ट्र तभी आनन्दित रह सकते हैं जबकि नारियाँ, कन्यायें अपने दायित्व का बोध करेंगी अपने विश्वरूपत्व को पहचानेंगी क्योंकि उनके सबल कन्धों पर ही इस चेतन राष्ट्र का भविष्य सुरक्षित है।

***

1. इस प्रसंग में **गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी ससम्भ्रमं यस्य** यह श्लोक ध्यातव्य है।

वासन्तिक नवरात्र में गौरी पूजन की यथार्थता

अभी कुछ दिन पूर्व स्वाध्याय करते हुए एक मन्त्र पर दृष्टि अटक गई जो पहले भी गुरुमुख से अधीत था क्योंकि निरुक्त में वह मन्त्र आया है और सम्पूर्ण निरुक्त अपनी पूज्या आचार्या स्व. **डा. प्रज्ञा देवी जी** से हमने पढ़ा है। वह दिन वासन्तिक नवरात्र का था और समीपस्थ **केराकत आर्यसमाज** के **महिला सम्मेलन** में एकमात्र वक्ता के रूप में मेरा आमन्त्रण था। वासन्तिक नवरात्र में नवगौरी का दर्शन पूजन सनातन धर्म में विहित है और विशेषरूप से काशी में इसका अधिक ही महत्व है। अस्तु। जिस मन्त्र पर मेरी दृष्टि थमी थी उसमें नवपदी गौरी की चर्चा थी और इधर नवरात्र का दूसरा दिन था। मन में बड़ी तीव्रता से विचारों का आन्दोलन हुआ। एक तरफ वासन्तिक नवरात्र में नवगौरी का दर्शन! पूजन! दूसरी तरफ वेदों में भी नवगौरी का वर्णन! बड़ी उत्सुकता से गौरी शब्द की छानबीन आरम्भ की, सभी वेदभाष्य देखे, कोश देखे और विचारों ने एक शृंखला का रूप धारण कर लिया। सोचा अपने आर्य भाई बहिनों को भी घर बैठे नवगौरी के दर्शन करा दूँ, और लिखने बैठ गई।

पुराणों के अनुसार गौरी स्त्रीरूपधारिणी कोई शक्ति है जो पार्वती यानी शंकर जी की पत्नी के रूप में चर्चित है। लोक में गौरी-शंकर इस नाम साहचर्य से भी यह सिद्ध है। और उन्हीं का (1) मुखनिर्मालिका गौरी (2) ज्येष्ठा गौरी (3) सौभाग्य (4) शृंगार (5) विशालाक्षी (6) ललिता (7) भवानी (8) मंगल (9) महालक्ष्मी आदि नवगौरी के नाम से दर्शन-पूजन प्रति वासन्तिक नवरात्र पर काशी नगरी में विशेष रूप से प्रचलित है। भोले बाबा की इस नगरी में जहाँ का कंकर भी शंकर माना जाता हो वहाँ एक नहीं नौ-नौ नाना नाम रूपधारिणी गौरी जी का वास हो, उनकी प्रतिष्ठा हो और विधिवत् उनके दर्शन-पूजन की व्यवस्था हो तो कोई आश्चर्य नहीं। यहाँ तो उनके निवास के लिये एक मोहल्ला ही बना हुआ है जो बनारस की आम भाषा में 'पक्का मोहाल' या शक्तिपीठों का गढ़ ठेठ बनारसी मुहाल भी कहा जाता है। ठीक

ही है क्योंकि जहाँ इतनी मातायें एक साथ रहेंगी वहाँ उनके लड़के-बच्चे भी तो होंगे ही, तो उनके लिये एक मोहल्ला तो चाहिये ही। अस्तु।

गौरी शब्द की व्युत्पति पर जरा ध्यान दें– गौर शब्द से स्त्रीलिङ्ग में **षिद्गौरादिभ्यश्च**[1] इस पाणिनीय सूत्र से ङीष् प्रत्यय करके गौरी शब्द बनता है। **'नामानि आख्यातजानि'**[2], इस यास्क वचन प्रामाण्य से गौर शब्द भी एक व्युत्पन्न प्रतिपादिक है। उणादि कोश में गौर शब्द गै शब्दे तथा गुङ् अव्यक्ते शब्दे धातु से क्रमशः ओरन् तथा रक् प्रत्ययान्त निपातित[3] है। जिसका अर्थ हुआ–

'गायति शब्दं करोति, गवते अव्यक्तं शब्दयतीति वा गौरः'

अर्थात् जो व्यक्त अथवा अव्यक्त शब्द करे उसे गौर कहते हैं। इस दृष्टि से व्यक्त स्पष्ट शब्द करने वाला गौर कोई मनुष्य ही कहा जा सकता है तथा अव्यक्त शब्द करने वाला गौर पशु पक्षी या कोई भी हो सकता है। इसी आधार पर धीरे-धीरे लोक में गौर शब्द गौर मृग (पशु) अथवा गौरवर्ण जो अन्यों से अधिक अभिव्यक्त होता है, अर्थ में रूढ़ हो गया। परिणाम स्वरूप उव्वट, महीधर सायणाचार्यादि वेद भाष्यकारों को वेद में कहीं भी गौर या गौरी शब्द देखते ही **गौरः**[4] = गौरमृगः **गौर्यः**[5] = गौरवर्णाः गावः, **गौर्यं**[6] = गौरवर्णां सोमक्रयणीं गाम्, **गौरः**[7] = अरुणवर्णः इस रूढ़ अर्थ के सिवाय और कोई अर्थ प्रायः सूझा ही नहीं।

जबकि वैदिक शब्द कोश में गौरी शब्द **वाङ्नाम**[8] तथा **पदनाम**[9] में

---

1. अष्टा. 4/1/41
2. निरु. 1/4
3. उणा. 1/65 तथा 2/28
4. ऋ. 1/16/5
5. ऋ. 1/84/10
6. ऋ. 10/126/8
7. ऋ. 4/58/2
8. निघ. 1/11
9. निघ. 5/5

पढ़ा है। एक वेदभाष्यकार वैदिक कोश न देखे, उसका सहारा न ले यह घोर आश्चर्य का विषय है। निघण्टु शब्दों के प्रसिद्ध व्याख्याकार **श्री देवराज यज्वा** ने अपने भाष्य में गौरी शब्द की कई प्रकार से व्युत्पत्ति दर्शायी है। तद्यथा– गुरी उद्यमने धातु से– **गुरते उद्यच्छति स्वमभिधेयम् इति गौरी** (–उद्यमनं पुनः चारु प्रकाशनम्) अर्थात् जो अपने वाच्यार्थ को शब्दों द्वारा भली-भाँति प्रकाशित कर सके वह वाणी। इसी गुरी उद्यमने धातु से उद्यमशील जो नारी है उसको भी गौरी कहा जा सकता है। महर्षि यास्क निरुक्त में मध्यमस्थानीय अर्थात् अन्तरिक्षस्थानीय स्त्रीदेवताओं की चर्चा करते हुए लिखते हैं–

गौरी रोचतेर्ज्वलतिकर्मणः। अयमपीतरो गौरो वर्ण एतस्मादेव प्रशस्यो भवति।।[1]

अर्थात् यह गौरी शब्द ज्वलति अर्थ वाले रुच दीप्तौ धातु से बनता है। वर्ण के रूप में प्रयुक्त गौर शब्द भी इसीलिये प्रशंसनीय होता है। इस विषय में निरुक्त टीकाकार आचार्य स्कन्द तथा दुर्ग की टीका द्रष्टव्य है। वहाँ लिखा है–

गौरी मध्यमस्थाना स्तनयित्नुलक्षणा वाग् विद्युद् वा सा पुनः दीप्तिमती।

अर्थात् मध्यम = अन्तरिक्षस्थानीया विद्युत् तथा तद्वत् चमकती गरजती जो वाणी है वही यहाँ गौरी शब्द से अभिप्रेत है। मन्त्रों के आधिदैविक पक्ष में गौरी शब्द का विद्युत् अर्थ ध्यातव्य है।

इन सबसे पृथक् वर्त्तमान युग के साक्षात्कृतधर्मा स्वोपज्ञ महर्षि देव दयानन्द गौर पद का अर्थ अपने भाष्य में लिखते हैं– **यो गवि सुशिक्षितायां वाचि रमते सः गौरः**[2] तथा यजुर्वेद में **यो वेदविद्यावाचि रमते सः गौरः**[3] अर्थात् जो सुशिक्षित वाणी, वेदवाणी में रमण करता है, आनन्दित होता है वह पुरुष गौर पद वाच्य है।

---

1. निरु. 11/28
2. ऋ. 4/58/2
3. यजु. 17/90

यहाँ मैंने सोचा कि ठीक इसी प्रकार जो वेदविद्या वेद वाणी में रमण करने वाली स्त्री हो वह भी तो गौरी कही जायेगी! यहाँ गो शब्द उपपद रहते रमु क्रीडायाम् धातु से **अन्येष्वपि दृश्यते**[1] इस पाणिनीय सूत्र से 'ड' प्रत्यय तथा गो शब्द में विभक्ति का अलुक् करके निष्पन्न गौर शब्द कहीं से भी अपाणिनीय नहीं है। और बिल्कुल नया व्यावहारिक अर्थ है। वाह! क्या बढ़िया सूझ है। पढ़कर मन झूम उठता है, विभोर हो उठता है अंग-प्रत्यङ्ग, हृदय श्रद्धा से भर जाता है। यह एक दृष्टिकोण है विचारों का, सिद्धान्तों का, जिसमें शास्त्रों को पढ़ लेना ही पर्याप्त नहीं होता है। **शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः** कहा गया है।

अभी कुछ दिन पूर्व एक महान् वैयाकरण दार्शनिक लेखक महोदय से भेंट हुई जो प्रायः संस्कृत जगत् में राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रिय स्तर पर सम्मानित होते रहते हैं। और परम्परा से आर्य कुलोत्पन्न हैं वे कदम्ब शब्द का अर्थ कर रहे थे कुत्सिता अम्बा कदम्बः अर्थात् जो कुत्सित निन्दनीय माता है 'वह कदम्ब हैं', कह कर जोर का ठहाका लगा रहे थे। मुझसे नहीं रहा गया तो मैं बोल पड़ी, एक शंकराचार्य जी भी हैं जिन्होंने अपनी छोटी-सी पुस्तक प्रश्नोत्तरी में 11 बार ऐसे प्रश्न उठाये हैं जिसमें स्त्री की चर्चा है और हर बार उसे अपमानित किया है, लाञ्छित किया है, फिर भी अन्तिम बार जो प्रश्नोत्तर किया है उससे पता चलता है कि संसार में घोर स्त्रीद्वेषी भी नारी के माता रूप की कभी निन्दा नहीं कर सकता। वह अन्तिम प्रश्नोत्तर है– **"मातेव का या सुखदा? सुविद्या।** अर्थात् माता के समान सुख देने वाली दुनियाँ में कौन है? तो उत्तर दिया– सुविद्या यानी माता अपने मातृरूप में सदा प्रशंसनीय ही होती है, वह कभी भी निन्दा की पात्र नहीं हो सकती है पर आप तो उससे भी गये-बीते हो गये। सचमुच हमारी पूज्या आचार्या जी थीं जो कभी हँसी में भी कोई संस्कृति के विरुद्ध, सिद्धान्त के विरुद्ध बात नहीं सुन सकती थीं। हम लोगों को भी यही शिक्षा प्राप्त है। इसलिए केवल शास्त्रों को पढ़ लेना

1. अष्टा. 3/2/101

या पढ़ा देना महत्वपूर्ण नहीं है अपितु ज्ञान के साथ-साथ वह दृष्टि भी चाहिये जो हमें दयानन्द से मिलती है अन्यथा हमारे लिये सोना भी मिट्टी है।

सायणाचार्य जी के वेदभाष्य में यही तो सबसे बड़ी कमी है। वे वेदभाष्य करते हुए तत्सम्बन्धित जितने भी उद्धरण हैं सब प्रस्तुत कर देंगे पर उससे कोई तात्पर्यार्थ नहीं निकाल सकते। ऐसा लगता है उनका भाष्य कोई भाष्य न होकर तत्संबन्धित शास्त्र संग्रह है जिसमें अपना कोई सिद्धान्त नहीं है अपना कोई चिन्तन नहीं है। कहीं बुद्धि स्फुरित भी होगी तो बस कोई आकाशीय अकल्पित बिना किसी सिर-पैर की कहानी गढ़ने में। अस्तु।

प्रस्तुत है नवगौरी का आख्यान करने वाला वह मन्त्र जिसकी आप सबको बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा है। मन्त्र इस प्रकार है–

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्॥[1]

इस मन्त्र की व्याख्या निरुक्तकार यास्क गौरी शब्द को माध्यमिका वाक् मान कर करते हैं। जिसका कि सभी भाष्यकारों ने अनुसरण किया है किन्तु महर्षि इसकी व्याख्या स्त्रीपरक करते हैं। उनके अनुसार एकपदी से लेकर नवपदी तक सभी शब्द विदुषी स्त्री गौरी के विशेषण हैं। महर्षि के शब्दों में मन्त्रार्थ इस प्रकार है–

एकपदी = एकवेदाभ्यासिनी एक वेद का अभ्यास करने वाली **द्विपदी = अभ्यस्त द्विवेदा** दो वेदों का जिसने अभ्यास किया है वा **चतुष्पदी = चतुर्वेदाध्यापिका** चार वेदों को पढ़ाने वाली **अष्टापदी = चतुर्वेदोपवेदविद्या-युक्ता** चार वेद और चार उपवेदों की विद्या से युक्त अथवा **नवपदी = चतुर्वेदोपवेद-व्याकरणादिशिक्षायुक्ता** चार वेद चार उपवेद और षडङ्गों में प्रधान व्याकरणादि की शिक्षा से युक्त **बभूवुषी = अतिशयेन विद्यासु भवन्ती** अतिशय करके विद्याओं में प्रसिद्ध होती **सहस्राक्षरा = सहस्राणि असंख्यातान्यक्षराणि यस्याः सा** असंख्यात

1. ऋ. 1/164/41

अक्षरों (अविनाशी शक्तियों) वाली होती हुई **परमे व्योमन्** सबसे उत्तम आकाश के समान व्याप्त निश्चल परमात्मा के निमित्त प्रयत्न करती है और **सलिलानि तक्षती = जलानीव निर्मलानि वचनानि** जल के समान निर्मल वचनों को छाँटती अर्थात् अविद्यादि दोषों से अलग करती है ऐसी जो नारी है **सा** वह **गौरीः** गौरी नाम से **मिमाय** प्रसिद्ध होती है। ('मातिः प्रसिद्ध्यर्थे धातुः' इति सायणभाष्यम्)

यहाँ महर्षि गौरीः पद में **सुलोपाभावश्छान्दसः** मान कर गौरी शब्द को प्रथमा तथा द्वितीया दोनों विभक्त्यन्त मानते हैं और एक नया अर्थ करते हैं कि स्त्री स्वयं तो चार वेद चार उपवेद और व्याकरणादि शिक्षा से युक्त हो ही और साथ में अन्य **गौरीः** (वेद ज्ञान की आभा से) गौरवर्ण युक्त विदुषी स्त्रियों को भी **मिमाय** शब्द कराती पढ़ाती हो ऐसी नारी महर्षि के शब्दों में– **विश्वकल्याणकारिका भवति** सारे संसार का कल्याण करने वाली होती है। ***इस प्रकार जो स्त्री सांगोपांग वेदों को पढ़ के पढ़ाती हैं वे सब मनुष्यों की उन्नति करती हैं। ये महर्षि के शब्द हैं।***

देखा आपने! क्या ही सुन्दर नौ गौरी का वर्णन आया है वेदों में। तो बताइये! आपको घर बैठे ही नवगौरी के दर्शन मैंने करा दिये कि नहीं! पर केवल वासन्तिक नवरात्र पर नवगौरी का दर्शन-पूजन करने वाले हमारे ये सनातनी भाई भी यदि इस वास्तविक जीवित जागृत वेद विदुषी नवगौरी का दर्शन-पूजन कर सकते और ऐसी साक्षात् नवगौरियों के निर्माण में प्रयत्नशील हो सकते तो आज महर्षि के सपनों की नारी नवगौरी का घर-घर में वास और उनका दर्शन-पूजन हो सकता उनके लिये कोई एक ऋतु विशेष नवरात्र विशेष या व्यक्ति विशेष (पार्वती रूपा) अथवा स्थान विशेष मुहल्ला ही पर्याप्त न होता।

***

11 मई 1997 **"सार्वदेशिक साप्ताहिक"**
दिल्ली में प्रकाशित

वेदों में - नारी का प्रत्येक क्षेत्र में समान अधिकार

प्राचीन वैदिक काल में ऋषियों की भाँति नारियाँ भी वेदमन्त्रों का दर्शन व प्रवचन करती थीं, जिन्हें समाज में ब्रह्मवादिनी तथा ऋषिका के नाम से पुकारा जाता था। वेद में अनेक ऐसे सूक्त व मन्त्र हैं जिनका दर्शन महिलाओं ने किया। अतः वेदों में आज भी तत्तत् सूक्तों के आरम्भ में ऋषियों की भाँति **"सावित्री सूर्या ऋषिका"**[1] **"सरमा देवशुनी ऋषिका"**[2] तथा **"अपाला आत्रेयी ऋषिका"**[3] **श्रद्धा कामायनी**[4] आदि लिखा मिलता है जिसे आज तक कोई मिटाने का साहस नहीं कर सका। पाठकगण मूल वेद में तत्तत् स्थलों को निकालकर स्वयं देख सकते हैं। बृहद्देवता में आचार्य शौनक ने ऐसी नारियों को ब्रह्मवादिनी अर्थात् ब्रह्म का प्रवचन करने वाली कहा है। तद्यथा–

> **घोषा गोधा विश्ववारा अपालोपनिषन्निषत्।**
> **ब्रह्मजाया जुहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादितिः॥**
> **इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी**
> **..............................ब्रह्मवादिन्य ईरिताः॥**[5]

इस श्लोक में लगभग 25 ऋषिकाओं के नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। यह एक ऐसा प्रमाण है जिससे कि नारियों के वेदाध्ययन विरोधियों को भी यह स्पष्ट रूप से स्वीकार करना पड़ता है कि किसी समय पुरुषों की भाँति नारियों को भी वेदाध्ययन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। नारी होने के कारण उन्हें इस ज्ञान व शिक्षा से कभी वंचित नहीं होना पड़ता था।

---

1. ऋ. 10/85
2. ऋ. 10/108
3. ऋ. 10/91
4. ऋ. 10/151
5. बृहद्देवता 2/82 से 84

अभी कुछ दिनों पूर्व स्वाध्याय करते हुए किसी प्रसंग में मैंने पुस्तकालय से जब सिद्धान्त कौमुदी निकाली जो कि आज से 120 वर्ष पूर्व श्री क्षेमराज कृष्णदास जी ने अपने श्री वेङ्कटेश्वर मुद्रणालय मुम्बई से प्रकाशित की थी, उसे लेकर मैं अभी पलट ही रही थी कि अकस्मात् ग्रन्थ के आरम्भ में ही प्रस्तावना विशेष के रूप में लिखित **"लघु त्रिमुनि कल्पतरुः"** के 13वें पृष्ठ पर मेरा ध्यान केन्द्रित हो गया जहाँ कहा गया था– **"स्त्रियोऽपि विद्याध्ययना-ध्यापनयोरधिकारिण्यो भवन्ति"** अर्थात् स्त्रियाँ भी विद्याध्ययन की अधिकारिणी हैं। इस कुछ मोटे टाइप में छपे शीर्षक सदृश वाक्य को पढ़कर मेरी उत्सुकता बढ़ी और मैं बड़ी शीघ्रता से पढ़ने लगी, वहाँ मुझे यह पढ़कर अत्यधिक आत्मसन्तोष हुआ कि उन्होंने स्त्रियों के वेदाध्ययन के विषय में वे ही प्रमाण दिये हैं जो एक सामान्य रूप से किसी भी ब्राह्मण पुरुष के लिए दिये जा सकते हैं। वे लिखते हैं–

"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" इत्युक्तेः **"अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत तमध्यापयीत"** इत्युक्तेश्च।

आगे वे अपनी बात को और भी स्पष्ट करते हुए बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं–

"अत्र ब्राह्मणपदं जातिपरम्। तेन ब्राह्मणजातीयानां पुंसामिव स्त्रीणामपि तज्जातीयानां तदध्ययनमध्यापनञ्च भवति।"

अर्थात् जैसे ब्राह्मण के लिए बिना किसी कारण विशेष का प्रश्न किये, उसे छः अंगों सहित वेद का अध्ययन करना और उसे जानना अनिवार्य है तथा जैसे 8 वर्ष के ब्राह्मण का उपनयन करना चाहिए, इस वचन का पालन करना ब्राह्मण जातीय बालक के लिए अनिवार्य है उसी प्रकार जो ब्राह्मणजातीय स्त्रियाँ हैं उन्हें भी वेदाध्ययन करने का पूर्ण अधिकार है। आगे वे बृहदारण्य-कोपनिषद् के उस वचन को उद्धृत करते हैं जिसमें पण्डित पुत्र के समान पण्डिता पुत्री को उत्पन्न करने के लिए तथा उसे पूर्णायु बनाने के लिए

गर्भाधान से पूर्व पति-पत्नी तिल और चावल को एक साथ पकाकर उसमें घी डालकर खायें, यह लिखा है। तद्यथा–

अथ य इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ।[1]

इस प्रमाण के साथ ही अन्य अनेक स्कन्द-सूतसंहिता, शुक्रनीति, महाभारत, आग्नेय, भोजप्रबन्ध, महाभाष्यादि ग्रन्थों का उद्धरण देने के बाद अन्त में वे तर्क देते हुए लिखते हैं–

प्रागुक्तरीत्या- "नानृतं वदेदित्यादिनिषेधस्य सर्वसाधारणत्वाच्च। आचार्यश्रुश्रूषणादिनियम एव स्त्रीणामधिकारो नेत्यभिप्रायेण निषेध-विध्यादयः प्रवृत्ताः।"

अर्थात् पूर्वोक्त रीति से जैसे ब्राह्मण मात्र सभी स्त्री-पुरुषों को वेदाध्ययनादि में समान अधिकार मान्य है। तद्वत् उसी रीति से सच बोलो, धर्माचरण करो, झूठ मत बोलो, हिंसा मत करो आदि विधि-निषेध का पालन भी सबके लिए समान रूप से आवश्यक है। कोई यह कहे कि केवल आचार्य की शुश्रूषा = सेवादि का ही नियम नारियों के लिए है, ऐसा नहीं। पं० क्षेमराजकृष्णदास जी की यह बात इतनी युक्तियुक्त और महत्वपूर्ण है कि हम नारियाँ स्वयं अपने पक्ष की पुष्टि में यदि यही बात कहतीं तो सम्भवतः कोई उसे मानता नहीं। लेकिन यह सत्य है कि वेद या वेदानुकूल वैदिक साहित्य में या अन्यत्र भी जहाँ भी सामान्य रूप से पुंल्लिङ्ग शब्द का प्रयोग करके कोई निर्देश है वह स्त्री-पुरुष सभी के लिए समान रूप से उपादेय है, यही मानना चाहिए। चाहे वह पुत्र की कामना हो, वीरत्व की कामना हो, नागरिकता की बात हो या नैतिकता की, वह सबके लिए है, यही मान्य है। वेद में तो बड़े स्पष्ट शब्दों में आत्मा की अलिङ्गता का वर्णन इस मन्त्र में प्राप्त होता है–

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः।।[2]

1. बृ.उ. 6/4/17
2. अथर्व. 10/8/27

फिर भी यदि कोई पुंल्लिंग प्रयोग को देखकर यज्ञ-यागादि में स्त्रियों के अधिकार-अनधिकार की बात करता है अथवा पुत्र की कामना वाले मन्त्रों में पुत्री का ग्रहण नहीं स्वीकार करता है अथवा वैदिक काल में उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त नहीं थे जैसी बातें करता है तो ऐसे लोगों से मैं पूछना चाहती हूँ कि बृहदारण्यकोपनिषद्[1] में ही जहाँ प्राचीन काल में ऋषि-मुनि पुत्रैषणा आदि से ऊपर उठकर भिक्षावृत्ति से ही जीवन यापन करते थे, यह लिखा है, वहाँ पर पुत्रैषणा शब्द में पुत्र (पुंल्लिंग) शब्द का ही प्रयोग होने के कारण पुत्र की कामना से निवृत्त होने का यही अर्थ लिया जायेगा कि हमें पुत्र की कामना तो नहीं, हाँ! पुत्री की कामना अवश्य करनी चाहिए, क्योंकि पुत्री की **एषणा** = कामना का निषेध इस पुत्रैषणा शब्द में नहीं है। इसी प्रकार अनेकत्र वेदों में शास्त्रों में ही नहीं सामान्य लोक व्यवहार में भी पदे-पदे ऐसे अनेक प्रसंग उद्धृत किये जा सकते हैं जिनमें कोई भी वाक्य सामान्य रूप से स्त्रीलिंग में प्रयुक्त न होने के कारण पुरुषों के लिए ही आदिष्ट मान्य होगा। ऐसी स्थिति में आज भी नारियाँ जहाँ अनेक सामाजिक, पारिवारिक दायित्वों, बन्धनों से सर्वथा विमुक्त हो जायेंगी वहीं आप स्वयं अपने शब्द प्रयोग को लेकर खतरे में पड़ जायेंगे।

शास्त्रों में ऐसे दोषों की निवृत्ति तथा सुचारु शब्द-व्यवहार के लिए पाणिनि का एकशेष प्रकरण ध्यातव्य है। जहाँ **पुमान् स्त्रिया**[2] आदि सूत्रों के माध्यम से महर्षि पाणिनि ने लोकवेदोभय साधारण यह नियम बताया है कि जहाँ स्त्री तथा पुंल्लिङ्ग वाचक दोनों शब्दों का पृथक्-पृथक् प्रयोग करना आवश्यक हो वहाँ केवल पुंवाचक शब्द के प्रयोग से ही दोनों का सामान्य रूप से ग्रहण हो सकता है क्योंकि पुमान् शब्दों के साथ स्त्री शब्दों का एकशेष हो जाता है। वेदार्थ ज्ञान के लिए षडंगों में व्याकरण प्रधान है– **प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्, प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति।**

1. बृ.उ. 4/4/22
2. अष्टा. 1/2/67

तदनुसार पतञ्जलि से प्रमाणित पाणिनि का यह निर्देश हम सबके लिए मान्य है। इसीलिए सांख्य दर्शन में– **लोके व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः**[1] अर्थात् लोक में व्युत्पन्न व्यक्ति ही वेदार्थ की गम्भीरता को, सूक्ष्मता को, गहनता को जान सकता है, समझ सकता है, यह कहा है। यही नहीं– **"व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्"** अर्थात् जो बात लोकसिद्ध है उसमें केवल सन्देह मात्र से विपरीत निर्णय कर लेना उचित नहीं। वस्तुतः शास्त्रीय चिन्तन, शास्त्रीय अध्ययन परम्परा से विमुख होकर **वेदान्नो वैदिकाः शब्दाः सिद्धाः लोकाच्च लौकिकाः तस्मादनर्थकं व्याकरणं** कहने वाले लोग ही **मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्तो हरीतकी** अर्थात् मुख है तो हम कुछ भी कहने-लिखने का अधिकार रखते हैं जैसे कह दिया– दस हाथ की हरीतकी (छोटी हरड़) होती है जो कि कभी संभव ही नहीं है, यह चिन्तन हमारी आर्ष परम्परा के विपरीत है।

आज भी ऐसे प्रश्नों व विचारों के महल खड़े करने वालों से मेरा नम्र निवेदन है कि वेद या वेदादि शास्त्रों के विषय में उन्हें कुछ भी बोलने व लिखने का अधिकार नहीं है जिन्होंने स्वयं वेद का अध्ययन, वेदांगों का अध्ययन यथाक्रम गुरुमुख से न किया हो। वेद कहता है–

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्।।[2]

अर्थात् जो मनुष्य प्रत्येक प्राणी के मित्र रूप वेद का परित्याग कर देता है उसे प्रवचन करने का अधिकार नहीं है, वह जो कुछ सुनता है झूठ सुनता है, वह सुकृत के पथ को नहीं जानता। अस्तु।

वैदिक ऋषिकायें और नारी अधिकार

सृष्टि के आदि में चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त होने के अनन्तर जिन सूक्तों

1. सांख्य दर्शन 5/40
2. ऋ. 10/71/6

या मन्त्रों का दर्शन नारियों ने किया, वेद के उन्हीं कुछ सूक्तों के माध्यम से वेद में नारियों को वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो एक बुद्धिजीवी मनुष्य को प्राप्त हो सकते हैं। मैं इसे सिद्ध करूँगी।

रोमशा

सर्वप्रथम ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 126वें सूक्त की मैं चर्चा करने जा रही हूँ जिसके अन्तिम सातवें मन्त्र की ऋषिका का नाम है **"रोमशा"**। जिसका सीधा सरल अर्थ है बहुत रोमों अर्थात् लोमों वाली, और यही अर्थ प्रायः सभी भाष्यकारों ने अपने वेदभाष्य में किया है। जबकि निरुक्तकार यास्क की दृष्टि से **प्रशस्तं रौति या सा रोमशा**[1] अर्थात् जिसका प्रशंसनीय वेदापदेश व ज्ञान हो उसका नाम है रोमशा। इस सूक्त के अन्तिम दो मन्त्रों में क्रमशः राजा भावयव्य तथा रानी रोमशा का संवाद माना जाता है। भावयव्य का अर्थ है **भावं यौति मिश्रयति यः सः भावयवः भावयव एव भावयव्यः** अर्थात् दूसरों की भावनाओं के साथ स्वयं को जोड़ने वाला। प्रसंगानुसार भावयव्य का अर्थ होगा अपनी सखीभूत सहयोगिनी पत्नी का सम्मान करने वाला कोई भी राजा या पुरुष। जैसा कि वह–

आगधिता परिगधिता या कशीकेव जंगहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता।।[2]

इस मन्त्र के द्वारा भावयव्य गुण से युक्त कोई भी पुरुष अपनी पत्नी की प्रशंसा करते हुए कहता है– **या जंगहे** = जो राज्य के संचालन में **कशीकेव** = उत्तम कुशल प्रशासिका के समान, **आगधिता परिगधिता** = मेरे विचारों के साथ अपने विचारों को मिलाती[3] हुई **या आशूनां यादुरि** = जो शीघ्रगामियों में अत्यन्त प्रयत्न वाली **मह्यं शता भोज्यानि ददाति**

1. रु शब्दे + मनिन्, प्रशंसायां मत्वर्थे शः, टाप् = रोमशा
2. ऋ. 1/126/6
3. गध्यतिर्मिश्रीभावकर्मा निरु. 5/3/52

= मुझे सैकड़ों प्रकार के पालनीय कर्त्तव्यों का ज्ञान देती है वह सबके द्वारा प्रशंसनीय है। इसके अगले मन्त्र में रोमशा स्वयं अपने लिए कहती है–

उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका॥[1]

अर्थात् हे राजन्! अथवा हे राष्ट्रवासियो! समाज के लोगो! **मा मे दभ्राणि मन्यथाः** = तुम मुझे नारी होने के कारण अल्प ज्ञान अल्प बल वाला मत समझना, मैं **गन्धारीणाम्**[2] = वेदविद्या को धारण करने वाली नारियों के मध्य **अविका** = उस वेदविद्या की पालिका रक्षिका हूँ। तदनुसार राजनीति, दण्डनीति आदि का मुझे भली-भाँति परिज्ञान है। आप अपनी समस्याओं के समाधान के लिए **उप उप** = बारबार मेरे समीप आकर **मे परामृश** = मुझसे परामर्श ग्रहण करो। इन मन्त्रों के माध्यम से परमेश्वर की आज्ञा तथा नारियों में पुरुषों के समान प्रशासकीय योग्यता व समानाधिकार है इसका ज्ञान होता है। जिसे स्वयं राजा भी स्वीकार करे और उससे सहयोग ले, यह द्योतित होता है। इस सूक्त के इन मन्त्रों का अर्थ सायणाचार्यादि वेदभाष्यकारों ने बहुत ही सांसारिक व अश्लील किया है जिससे नारी का स्वरूप केवल भोग्या है यही द्योतित होता है।

वागाम्भृणी

इसी प्रकार ऋग्वेद के ही दशम मण्डल के 125वें सूक्त की ऋषिका जो कि अम्भृण ऋषि की पुत्री आम्भृणी "वाक्" अर्थात् **वागाम्भृणी** है। इस सूक्त का देवता है "आत्मा"। आज भी वेदों पर काम करने वाले शोधार्थी अथवा वेद के जिज्ञासु जनों के लिए परम प्रमाण श्रीमत्सायणाचार्य जी के वेदभाष्य की वह पंक्तियाँ मैं यहाँ उद्धृत करना चाहती हूँ जो कि इस सूक्त के परिचय के रूप में लिखित हैं। पाठकगण ध्यान दें–

---

1. ऋ. 1/126/7
2. गां वाचं धरन्ति यास्ताः गान्धार्यः तासां गन्धारीणाम्।

अम्भृणस्य महर्षेर्दुहिता वाङ्नाम्नी ब्रह्मविदुषी स्वात्मानमस्तौत्। अतः सर्षिः। सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता। तेन ह्येषा तादात्म्यमनुभवन्ती सर्वजगद्रूपेण सर्वस्याधिष्ठानत्वेन चाहमेव सर्वं भवामीति स्वात्मानं स्तौति।

अर्थात् अम्भृण महर्षि की वाक् नाम वाली पुत्री जो कि ब्रह्मविदुषी है वह इस सूक्त के माध्यम से उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा के साथ तादात्म्य का अनुभव करती हुई मैं ही स्वयं सम्पूर्ण जगत् की अधिष्ठात्री पारमेश्वरी शक्ति हूँ, इस रूप में अपनी अर्थात् नारी शक्ति की स्तुति करती है। अतः वह इस सूक्त की ऋषिका है। इतना ही नहीं, इसी सूक्त के तीसरे मन्त्र में– **चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्**[1] इस मन्त्रार्ध का भाष्य करते हुए वे लिखते हैं–

चिकितुषी अर्थात् यत् साक्षात् कर्त्तव्यं परं ब्रह्म तज्ज्ञातवती स्वात्मतया साक्षात् कृतवती। अतएव यज्ञियानां यज्ञार्हाणां प्रथमा मुख्या।[1]

अर्थात् वह चिकितुषी है क्योंकि जो साक्षात् करने योग्य परम ब्रह्म है उसका वह साक्षात् कर चुकी है। अतएव यज्ञ करने के योग्य यज्ञार्हों में वह प्रथम मुख्य है। सायणाचार्य जी की इन पंक्तियों को, कि नारी **ब्रह्मविदुषी** है, **ऋषिका** है, **ब्रह्म का साक्षात् कर चुकी** है, अतः **यज्ञार्हों में प्रथम** है पढ़कर कम से कम मुझे तो अत्यन्त ही आत्मगौरव की अनुभूति हुई क्योंकि एक तरफ जहाँ आदि शंकराचार्य जी ने **यदि मे दुहिता पण्डिता जायेत** इस बृहदारण्यकोपनिषद् के भाष्य पर **''दुहितुः पाण्डित्यं गृहकार्यविषयमेव। वेदे अनधिकारात्''**[2] अर्थात् दुहिता का पाण्डित्य गृहकार्य विषयक ही है, वेदाध्ययन में उसका अधिकार न होने से लिखा है और इसी बात को पकड़ कर जो लोग नारियों का पाण्डित्य, उनका वैदुष्य केवल गृहकार्य विषयक ही है, ऐसा लिखते व मानते हैं, उनके लिए जादू है–जादू वह जो सिर चढ़

---

1. ऋ.10/125/3
2. बृ.उ. 6/4/17

बोले सायणाचार्य जी द्वारा नारी के वैदुष्य, उसकी ब्रह्मज्ञता को इन पंक्तियों में स्वीकार करना, यह ध्यातव्य है।

यद्यपि नारियाँ यज्ञिय हैं, यज्ञिय ही नहीं ब्रह्मा हैं यह तो अनेक मन्त्रों से सिद्ध होता ही है। ऋग्वेद के ही एक मन्त्र में– **"इडा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः"**[1] अर्थात् इडा, सरस्वती, मही ये देवियाँ जो कि यज्ञिय हैं वे इस यज्ञ वेदी पर आकर बैठें, कहा गया है। इसी प्रकार इसी सूक्त के एक अन्य मन्त्र में कहा गया है–

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥[2]

अर्थात् मैं जिसको जैसा चाहती हूँ तदनुसार उसको **ब्रह्मा** = चारों वेदों का ज्ञाता तथा **ऋषि** = अतीन्द्रियार्थ विषयों का दर्शन कराने वाली **ऋषिर्दर्शनात्**[3] सुमेधा से, दृष्टि से युक्त करती हूँ। इन मन्त्रों में परमेश्वर ने नारी को वह अधिकार तथा कर्त्तव्य की प्रेरणा दी है जिससे कि वह परिवार को, समाज को जैसा चाहे बना सकती है। वही वीर, विद्वान्, सदाचारी, सच्चरित्र, कर्त्तव्यनिष्ठ, पुत्र-पुत्रियों की जननी है।

पौलोमी शची

ऋग्वेद के दशम मण्डल में ही 159वें सूक्त की ऋषिका है पुलोमतनया **पौलोमी शची**। इस सूक्त के माध्यम से एक नारी किस प्रकार सहनशील बनकर पति तथा परिवार के हृदय को जीत सकती है, यह बताया गया है। मन्त्र है–

अहं केतुरहं मूर्धा अहमुग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत्॥[4]

1. ऋ. 1/142/9
2. ऋ. 10/125/5
3. निरु. 2/3/11
4. ऋ. 10/159/2

अर्थात् मैं इस परिवार की, समाज की, राष्ट्र की **केतुः** = ध्वजा के समान यश-वैभव को बढ़ाने वाली हूँ तथा मैं ही **मूर्धा** = शरीर के उत्तमांग सिर के समान मुख्य और उग्रा = शत्रुओं के लिए भयंकर तथा विवाचनी = समयानुकूल विविध वचनों को बोलने वाली तथा क्रोधाविष्ट पति को भी प्रिय मधुर वचनों से युक्त करने वाली हूँ। **मम सेहानायाः** = मुझ सहनशील नारी की, **क्रतुम् अनु** = कर्म वा प्रज्ञा के अनुकूल **इत्** = ही **पतिः** = मेरा पति (माम्) **उपाचरेत्** = मेरे समीप आचरण करता है। तभी–

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः॥[1]

अर्थात् **मम पुत्राः** = मेरे पुत्र, **शत्रुहणः** = बाह्य तथा आन्तरिक शत्रुओं का हनन करने वाले, शारीरिक व आत्मिक बल से युक्त तथा **मे दुहिता** = मेरा दोहन करने वाली मेरे अनुरूप आचरण कर सबको आनन्द से (दुह प्रपूरणे) भर देने वाली मेरी बेटी **विराट्** = विविध विद्याओं व गुणों से सुभूषित होती है तथा मैं भी **संजया** = आत्मानुशासित आत्मजयी होकर परिवार के हृदय को भले प्रकार जीतने वाली हूँ तथा **पत्यौ** = पति के हृदय में **मे श्लोकः उत्तमः** = मेरा यश उत्तम प्रशंसनीय है। इन मन्त्रों का दर्शन करने वाली शची ऋषिका ने इस सूक्त के माध्यम से नारी जाति को सहनशील तथा उसे स्वयं अपनी आत्मा की मलिका बनकर अधिकाधिक परिवार का निर्माण करने वाली होना चाहिये, यह सन्देश दिया है।

उपनिषत् सपत्नी बाधनम्

ऋग्वेद का ही एक अन्य सूक्त है– **"उपनिषत् सपत्नी बाधनम्"** जिसका अर्थ है उपनिषद् की सपत्नी अर्थात् प्रतिद्वन्द्विनी जिसे लौकिक भाषा में सौत कहते हैं उसका बाधन। उपनिषद् का अर्थ है वह ब्रह्मविद्या जो कि **उप** = गुरुओं के समीप **नि** = नियमित रूप से **षद्** = बैठकर प्राप्त करने

---

1. ऋ. 10/159/3

योग्य है और उसकी सपत्नी का अर्थ है उस ब्रह्मविद्या से सपत्नी अर्थात् सौत की तरह डाह करने वाली जो अविद्या है उसको दूर करने का जो उपाय उसका नाम है उपनिषत्सपत्नीबाधनम्। लेकिन आचार्य सायण इस सूक्त के आरम्भ में उपनिषद् शब्द को तो भूल गये, केवल–

अनेन सूक्तेन सपत्न्याः बाधनं प्रतिपाद्यते। अत एतत् सूक्तजपादिना सपत्न्या विनाशो भवति। अतस्तद्देवताकमिदम्॥

अर्थात् इस सूक्त में सपत्नी अर्थात् सौत का बाधन कहा गया है अतएव इस सूक्त के जपादि से सपत्नी का विनाश होता है इसलिये इस सूक्त का सपत्नीबाधनम् देवता है, यही लिखते हैं। जबकि इसी के आगे वे ऋक्सर्वानुक्रमणी जिसमें ऋग्वेद के प्रत्येक मण्डल के प्रत्येक सूक्त का ऋषि, देवता तथा छन्द इत्यादि क्रमशः उल्लिखित है उसके वचन को उद्धृत करते हैं जिसमें स्पष्ट रूप से 'उपनिषद् सपत्नीबाधनम्' यही उल्लिखित है। अस्तु, इस सूक्त की ऋषिका का नाम है **इन्द्राणी**। इसके पहले ही मन्त्र में–

इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमाम्।
यया सपत्नीम् बाधते यया संविन्दते पतिम्॥[1]

अर्थात् मैं **इमां वीरुधम्** = इस विपरीत मार्ग में जाने से रोकने वाली **ओषधिम्** = पापसंकल्पों को दग्ध करने की सामर्थ्य को **(ओषं दाहं धयति पिबति-धेट् पाने, दहनसामर्थ्यं दधातीति वा ओषधिः)** धारण करने वाली अत्यन्त बलवती ओषधि रूप **उपनिषत्** = ब्रह्मविद्या को **खनामि** = कठिन अभ्यास तप के द्वारा खोदती हूँ जिससे कि **सपत्नीं बाधते**– विद्या की सौत के सदृश वर्त्तमान अविद्या को दूर कर सबके पालक रक्षक **पतिम्** = प्रजापति परमेश्वर को मनुष्य **संविन्दते** = प्राप्त करता है, कर सकता है यह कहा है।

सूक्त के अन्य सभी मन्त्रों का इसी प्रकार बहुत सुन्दर युक्तियुक्त अर्थ

---

1. ऋ. 10/145/1

पण्डित जयदेव जी के हिन्दी भाष्य में देखा जा सकता है। इस सूक्त के माध्यम से इन मन्त्रों का दर्शन करके ऋषिका ने यह सन्देश दिया है कि कोई भी मनुष्य, चाहे वह नारी ही क्यों न हो, कठिन तप के द्वारा अविद्या का नाश कर परमतत्व के विवेक के द्वारा परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

अरण्यानी

उपरि लिखित सूक्त के मन्त्रों की संगति इसके अगले **"अरण्यानी"** सूक्त के साथ संग्रहणीय है। अरण्यानी का अर्थ है ऐसी नारी जो ब्रह्मविद्या को प्राप्त कर अरण्यगामिनी वानप्रस्थ अथवा चतुर्थाश्रम संन्यास को धारण करने वाली हो। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में ही–

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि।
कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दति॥[1]

अर्थात् हे अरण्यानि! जंगल की ओर अभिमुख, निवृत्ति मार्ग की ओर प्रेरित नारी! या **असौ** (त्वम्) = जो यह तुम, **अरण्यानी** = रमणीय भोग्य पदार्थों को न स्वीकार करने वाली अपने सुकोमल सौन्दर्य और यौवन को **प्र नश्यसि** = प्रकर्ष रूप से नष्ट कर रही हो, **कथा ग्रामं न पृच्छसि** = किस लिए गाँव या नगर को नहीं पूछ रही हो? **न त्वा भीरिव विन्दति** = क्या तुम इस जंगल में अथवा इस प्रव्रज्या के मार्ग से उसके कष्टों से भयभीत नहीं हो? इस सूक्त के द्वारा नारियाँ प्रव्रज्या = संन्यासादि की पूर्ण अधिकारिणी हैं, यह भी द्योतित होता है। आगे के मन्त्रों में जीवन के चरम उद्देश्य ब्रह्मानन्दरूपी–

स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं निपद्यते।[2]

स्वादुफल को खाकर **यथाकामम्** = अपने अभिलषित उद्देश्य को संकल्प को सफलतापूर्वक प्राप्त करती है, यह कहा है।

1. ऋ. 10/146/1
2. ऋ. 10/146/5

सरमा

ऋग्वेद के ही दशम मण्डल में एक सूक्त है जिसका देवता अर्थात् विषय है **सरमा** और उसकी ऋषिका का नाम भी है सरमा, वहाँ सरमा का जो विशेषण उल्लिखित है वह है **देवशुनी**। देवशुनी शब्द का सीधा-सीधा अर्थ हमारे भाष्यकारों ने जो किया है वह है– देवों की कुतिया। इस प्रकार सरमा ऋषिका को इन्होंने कुतिया बता दिया, यह नारी जाति का स्वयं सरमा ऋषिका का बहुत बड़ा अपमान है जबकि पूरे सूक्त में कहीं भी देवशुनी शब्द ही नहीं है। यह सूक्त संवादात्मक है जिसे एक आख्यायिका बनाकर भाष्यकारों द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

इसका पूरा कथानक जो सायणाचार्य जी द्वारा इसके भाष्य में कल्पित अथवा उद्धृत है वह इस प्रकार है– कभी इन्द्र के पुरोहित बृहस्पति की गायों का बल नामक असुर के भट पणिनामक असुरों द्वारा अपहरण करके किसी गुफा में छिपा दिया गया। तब बृहस्पति ने इन्द्र से प्रार्थना की कि आप मेरी गायों को ढुँढवाइये। इस प्रकार बृहस्पति द्वारा प्रेरित इन्द्र ने उन गायों को ढूँढ निकालने के लिये सरमा नाम की देवशुनी (देवों की कुतिया) को भेजा। वह देवशुनी मध्य में पड़ने वाली बहुत बड़ी नदी को पार करके बलपुर पहुँची जहाँ उसने गुप्त स्थान में छुपाई गई गायों को देख लिया। यह बात पणियों को पता चल गई तो वे उस कुतिया से मित्रता करने व उसे पटाने की बात सोचने लगे जिससे वह छुपाई गई गायों का पता देवों को न बता दे। उनके अनुसार इस सूक्त में यही ऐतिहासिक वाद संवाद है।

जब कि वेदों में इस प्रकार के लौकिक इतिहास की कल्पना करना सर्वथा दुष्ट है। कारण वेद नित्य हैं, वेदों का उद्भव सृष्टि के आदि में हुआ है।

महर्षि यास्क सरमा का उल्लेख मध्यस्थानीय स्त्री देवताओं में करते हैं। उनके अनुसार **सरमा सरणात्**[1] सरमा वह है जो गतिशील है। मैत्रायणी

1. निरु. 11/3/10

संहिता में **वाग् वै सरमा**[1] कहा है अर्थात् सरमा वाक् है जो कि अन्तरिक्ष में स्तनयित्नुलक्षणा विद्युत् के रूप में रहती है और समय आने पर वर्षाकाल में गरजती हुई प्रकट होती है। बिजली की गति स्वयं में अद्भुत होती है जो सेकेण्डों में काम तमाम कर देती है। इस गति के कारण ही उसे **सरमा**[2] कहा गया।

सह रमन्ते देवा विप्रा वा यस्यां सा सरमा वाक् जिसमें देवता तथा ब्राह्मण समान रूप से रमण करें उस वाणी का नाम है सरमा। यह व्युत्पत्ति यजुर्वेद भाष्यकार महीधर ने यजुर्वेद[3] में की है। वस्तुतः देवता तथा ब्राह्मण ही क्या देव असुर मनुष्य कोई भी यही नहीं स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े सब जिस वाणी में एक साथ रमण करते हैं उसका नाम है सरमा। वह वाणी वेदवाणी से लेकर लोक व्यवहार तक की ली जा सकती है। सह रमन्ते का यह अर्थ भी किया जा सकता है कि सरमा वह वाणी है जो कर्म में साथ-साथ रमण करती है। इस प्रकार सरमा वह सशक्त नारी या ऋषिका हुई जो वेदज्ञ है और वैदिक आज्ञा को कर्म में व्यवहार में स्वयं ही नहीं उतारती अपितु दूसरों को भी इसके लिये प्रेरित करती और आवश्यकता पड़ने पर समाज में परिवार में सामाजिक विसंगतियों के अन्याय के विरुद्ध भिड़ जाने का दम भी रखती है।

प्रकृत सूक्त में यही दर्शाया गया है। यहाँ सरमा को जो दायित्व सौंपा गया है कि वह असुरों द्वारा चुराई गई गायों का पता लगाये और उसे वापिस देवों को दिलवाये इस से नारियों को यह शिक्षा दी गई है कि उनका दायित्व है कि वे गायों का संरक्षण संवर्धन करें। मेरे देश में ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी गृहकार्यों के अन्तर्गत गायों को सानी पानी दुहना मथना घी बनाना आदि कार्य नारियाँ ही करती हैं। सच तो यह है इस देश की कोई भी बेटी यदि

---

1. मै.सं. 4/6/4
2. सृ गतौ + अमच्, बाहुलकात्- उणादि 4/85
3. यजु. 33/59

गाय को दुहना नहीं जानती तो वह दुहिता (पुत्री) कहलाने की अधिकारिणी नहीं मानी जाती थी। अस्तु। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पूरे सूक्त में कहीं भी देवशुनी शब्द नहीं आया है। पणियों के द्वारा पूछे जाने पर वह अपना परिचय स्वयं इन शब्दों में देती है–

इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन्वः।[1]

मैं इन्द्र जो देवों के राजा हैं, उनकी दूती हूँ और यहाँ तुम पणियों के खजाने को छानने आयी हूँ कि तुमने गायों को कहाँ चुरा कर रखा है आदि। वे पणि भी फिर उसके लिये दूती शब्द का ही व्यवहार करते हैं। मन्त्र के अनुसार वे पणि कहते हैं–

कीदृङ्ङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात्।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति॥[2]

अर्थात् तुम्हारा इन्द्र कैसा है? उसकी दृष्टि क्या है जिसकी तुम दूती बन कर यहाँ आई हो। फिर वे परस्पर विचार करते हुए कि कहीं वह इन्द्र युद्ध तो नहीं करना चाहता है? इसलिये क्यों न इस दूती को हम अपना मित्र बना लें और इसी को गायों का स्वामी बना कर यहीं रख लें आदि। इस प्रकार सरमा को देवदूती तो कहा जा सकता था पर देवशुनी नहीं। किसी मनुष्य को कुत्ता या कुतिया कहना उसका बहुत बड़ा अपमान है।[3] सायणाचार्य जी ने अथवा उव्वट महीधरादि ने सरमा के लिये इस शब्द का प्रयोग किया है जो कि अपमानजनक है आपत्तिजनक है। इस सूक्त के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि नारियों को राजकार्यों में सामाजिक कार्यों

---

1. ऋ. 10/108/2
2. ऋ. 10/108/3
3. ऋग्वेद 10/14/10 में जो **सारमेयौ श्वानौ** अर्थात् सरमा के दो अपत्य आये हैं वहाँ उसका अर्थ सरमा अर्थात् उषा के दिन रात रूपी दो पुत्र जो निरन्तर गतिशील होने से श्वानौ (श्वि गतिवृद्ध्योः) कहे गये पर इसलिये सरमा को देवशुनी कहना गलत है।

में यही नहीं विशेष रूप से दौत्य कर्म में वैशिष्ट्य प्राप्त था वे पुरुष के समान अधिकार रखती थीं। वे घूंघट वाली नारियाँ कहीं से नहीं थीं। दौत्यकर्म जो कि कठिन कार्य है जो कि विश्वासपात्र व्युत्पन्नमति व्यक्ति को ही सौंपा जा सकता है, इस दृष्टि से राजनीति में उनका पूरा उपयोग कर लेना चाहिये, इससे यह भी द्योतित होता है।

इस प्रकार ऋषिकाओं के इन सूक्तों के माध्यम से नारियों के लिये किसी भी क्षेत्र में कोई प्रतिबन्ध नहीं था वे पूर्ण स्वतन्त्रता से सभी धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक कार्यों में समान अधिकार रखती थीं, रख सकती हैं, यह स्पष्ट होता है।

***

नवम्बर 2005 वेदवाणी पत्रिका के
वैदिक नारी विशेषांक में प्रकाशित

शास्त्रार्थ का रूप लेता एक वृत्तान्त

पिछले दिनों 21-22 जनवरी 2012 द्विदिवसीय राज्यस्तरीय **महिला पुरोहित सम्मेलन** का आयोजन शौनकाश्रम पंचवटी नासिक (महाराष्ट्र) में **राष्ट्र सेविका समिति** की ओर से किया गया जिसमें मुझे अध्यक्षा के रूप में आमंत्रित किया गया था। वहाँ जाकर बहुत अच्छा लगा, सम्पूर्ण आयोजन महिलाओं का था। सम्मेलन संयोजिका **सौ. विद्या दुग्गल,** पुरोहित वर्ग प्रमुख **सौ. वैशाली पाठक** तथा सबकी प्रेरणाभूत मार्गदर्शिका **पूर्णिमा ताई** सहित महाराष्ट्र के विभिन्न मुम्बई, पुणे, नागपुर आदि स्थानों से अपनी-अपनी शाखा प्रमुख बहिनों की जागृति तथा सक्रियता को देखकर बहुत आनन्द हुआ। यद्यपि कार्यक्रम में सभी महिलायें-पुरुष मराठी में ही बोल रहे थे जिसमें मेरी बहुत रुचि नहीं थी पर महिलाओं का आत्मविश्वास और पूर्णिमा ताई का हर कार्यक्रम के अन्त में ऐक्शन सहित अधिकारपूर्वक समाधानात्मक वक्तव्य सभी को आनन्दित करने वाला होता था। बहिनों ने बताया, प्रतिवर्ष हम लगभग सौ महिला पुरोहिताओं को तैयार करते हैं। अबतक चार सौ महिला पुरोहिता तैयार हो चुकी हैं। सुन कर बड़ा उत्साह हुआ किन्तु धीरे-धीरे जब मैंने उनसे अन्तरंग वार्त्ता आरम्भ की तो निराशा भी हुई। और लगा कि **जब तक महिलायें विशुद्ध रूप से दयानन्द को नहीं अपनाएंगी, वे अज्ञानान्धकार से ऊपर नहीं उठ पाएंगी। बात संस्कारों की हो, यज्ञ की हो, वेदाध्ययन की हो या अन्य सामाजिक व्यवहार की, पुरुष समाज को अपना गुरु बनाकर महिलाओं का सम्पूर्ण उद्धार नहीं हो सकता।** कहीं न कहीं से उनके अल्पज्ञान व अल्पशक्ति का लाभ उठाकर उनका शोषण होता ही रहेगा। अस्तु।

सर्वप्रथम मैंने उनसे पूछा, आप महिला पुरोहिता बनकर सोलहों संस्कार कराती हैं, बोलीं– नहीं, ऐसा अवसर नहीं आता है। मैंने कहा– आप यज्ञोपवीत संस्कार कराती हैं? बोलीं– हाँ!, मैंने पूछा– आपका यज्ञोपवीत हुआ है, बोलीं– नहीं। उन्होंने पूछा- आप सन्ध्या करती हैं, मैंने कहा- हाँ। फिर मैंने पूछा– आप करती हैं, बोलीं हाँ। मैंने कहा– जरा सुनाइये, फिर सुनाने लगीं– **ओं केशवाय नमः वासुदेवाय नमः गोविन्दाय नमः माधवाय नमः** आदि-आदि। मैंने कहा– गोविन्द माधव वासुदेव आदि कौन हैं, आपको पता है? बोलीं– हाँ, श्रीकृष्ण हैं। फिर मैंने कहा– क्या श्रीकृष्णजी सन्ध्या करते थे? बोलीं– हाँ। मैंने कहा– सन्ध्या में आप गोविन्दाय, माधवाय वासुदेवाय बोलकर श्रीकृष्ण को नमन कर रही हैं तो स्वयं वासुदेव कृष्ण सन्ध्या करते समय किसको नमः बोलते होंगे? बोलीं– पता नहीं। मैंने उन्हें बताया यह वैदिक सन्ध्या नहीं है। वे बोलीं– पर हमारे गुरुजी ने तो हमें यही सिखाया है। फिर मैंने पूछा– आप इतनी संख्या में महिला पुरोहित बनाकर क्या करती हैं? बोलीं– हम ग्रहशान्ति, मंगला गौरी, हरतालिका, वट सावित्री पूजा, गणेश पूजन आदि जो हमारे गुरू जी ने हमको सिखाया है हम वो कराती हैं। मैंने कहा– आपको पता है– शास्त्रों में विवाह को छोड़कर शेष सभी संस्कार कन्याओं के अमन्त्रक अर्थात् मन्त्र रहित विधान किये गये हैं। फिर मैंने पूछा- आपको 16 संस्कारों के नाम पता हैं? बोलीं– हाँ, मैंने कहा– बताइये। क्योंकि इनके गुरूजी की पुस्तकों में वानंप्रस्थ संन्यास और अन्त्येष्टि इन तीन संस्कारों का तो प्रावधान ही नहीं है और उपनयन के बाद इनके यहाँ केशान्त संस्कार का विधान है। केशान्त का अर्थ है केशों का अन्त कर देना जो कि स्त्रियों का तो कोई करेगी नहीं। फिर स्त्रियों के 16 संस्कार कैसे होंगे? फिर मैंने गुरुजी से ही 16 संस्कारों के नाम पूछे, वे बोले– वेदारम्भ संस्कार के बाद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के अध्ययन का अलग-अलग संस्कार होता है इनको मिलाकर 16 संस्कार होते हैं। मैंने कहा– आपके शास्त्रों में तो पर शाखा के अध्ययन में दोष बताया गया है इसलिये जो ऋग्वेदी है वह ऋग्वेद

का ही अध्ययन करेगा यजुर्वेद सामवेदादि का नहीं। इसी प्रकार जो यजुर्वेदी है वह यजुर्वेद का ही अध्ययन करेगा ऋग्वेद का नहीं। फिर आपके मत में तो किसी पुरुष के भी 16 संस्कार पूर्ण नहीं होंगे और स्त्रियों का तो अमन्त्रक ही संस्कार आपके शास्त्र में विहित है जिससे कि वे वेदमन्त्र का श्रवण न कर सकें। फिर उनका तो उपनयन और वेदारम्भ संस्कार आप वैसे भी नहीं करेंगे। फिर उनके 16 संस्कार कैसे होंगे? तो चुप।

मैंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा, आपके जो गुरुजी हैं पहले मैं उनसे ही कुछ प्रश्न करना चाहूँगी– प्रथम क्या ये महिलायें जो कार्य कर रही हैं आप उससे सन्तुष्ट हैं, सहमत हैं? वे बोले- हाँ हमें प्रसन्नता है, महिलायें आगे बढ़ रही हैं, उनमें संस्कारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न हो रही है। यदि महिलायें संस्कारवती होंगी तो अपनी सन्तानों को भी सुसंस्कारी बनायेंगी, पर हाँ! जब बात शास्त्र की आयेगी तो उसमें तो शास्त्र ही प्रमाण माना जायेगा इसलिये यह प्रश्न तो विद्वानों के मध्य करने योग्य है। वे ही इसका निर्णय करेंगे। हम तो इसमें अपना कोई निर्णय दे नहीं सकते। फिर जब उन पर दबाव डाला गया कि आप भी तो विद्वान् हैं, आप क्या मानते हैं? आप अपनी बात बताइये कि क्या महिलायें पुरोहित बन सकती हैं? मन्त्रोच्चारण कर सकती हैं? उनके 16 संस्कार हो सकते हैं? तो उनको कहना पड़ा कि शास्त्र की दृष्टि से तो हम इससे सहमत नहीं हैं। एक और गुरु जी थे, वे भी लगभग यही बोले। अब महिलायें सतर्क होकर रुचिपूर्वक इस वार्तालाप को सुनने लगीं क्योंकि ये तो उनके अधिकारों पर प्रहार था। जिन गुरु जी को आज तक वे अपना परम हितैषी समझती थीं वे ही उनके पूर्ण पक्षधर नहीं थे। फिर थोड़ा रुक कर उनके गुरु जी बोले– आज प्रातः जब मैं अपने गुरु जी से मिलने गया तो यही चर्चा हमारे बीच हो रही थी। उन्होंने कहा– अरे! जब प्रकृति ने ही यह भेद कर दिया तो हमसे क्या पूछना है? हम भला क्या करेंगे इस विषय में? इसलिये यदि लड़ना है तो प्रकृति से लड़ो, फिर भी यदि कोई परिवर्तन ही करना है तो यह कार्य तो कोई युगपुरुष ही कर सकता है, हम आप नहीं।

मैंने कहा– ठीक है! बहुत अच्छी बात है। सर्वप्रथम मैं आपको बताना चाहूँगी कि उस युगपुरुष ने जन्म ले लिया है। इस कलियुग के वे महान् युगद्रष्टा युगपुरुष हैं– **महर्षि देव दयानन्द सरस्वती**, जिन्होंने हर ढोंग-पाखण्ड, अज्ञान, अन्धविश्वास के प्रति लोगों को सतर्क किया है, जिन्होंने स्त्री शिक्षा और संस्कारों पर भी सप्रमाण अपना युगान्तरकारी निर्णय दिया है कि कन्याओं के भी सभी 16 संस्कार मन्त्रोच्चारण पूर्वक होते हैं और होने चाहिये। सबसे बड़ी बात, उनका स्पष्ट कथन है, मैं जो भी कह या लिख रहा हूँ वह ईश्वर की आज्ञा रूप वेद को प्रमाण मान कर कह-लिख रहा हूँ, इसलिये मेरी बात यदि वेद के विरुद्ध हो तभी अमान्य है अन्यथा नहीं। क्योंकि वेद ही इस धरती पर स्वतः प्रमाण ग्रन्थ हैं इसके अतिरिक्त संसार के अन्य सभी ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं। यही सिद्धान्त आज तक ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषि महर्षि मानते आये हैं। मीमांसा दर्शन के स्मृति प्रामाण्याधिकरण में–

विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्।[1]

अर्थात् श्रुति और स्मृति के विरोध होने पर श्रुति ही मान्य है स्मृति नहीं, वहाँ स्मृति सर्वथा उपेक्षणीय है, किन्तु जो बात श्रुति से अविरुद्ध स्मृति में विहित हो वह वैदिक है, यह मान लेना चाहिये, कहा है। इसलिये यह ध्यान रखना होगा कि जब शास्त्र की बात आयेगी तो वही शास्त्र प्रामाणिक होगा जो वेद के अनुकूल होगा। वेदों में तो स्पष्ट रूप से नारी के विदुषी होने की चर्चा आई है। वेद के एक मन्त्र में उससे प्रार्थना की गई है कि–

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि देवभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥[2]

अर्थात् ऐ नारी! तू इडा है, रन्ता है, हव्या है, काम्या है, चन्द्रा, ज्योति,

---

1. मी. द. 1/3/3
2. यजु. 8/43

अदिति, सरस्वती, मही, विश्रुति है, तू अघ्न्या है, तेरे इतने सारे नाम हैं क्योंकि तू इतने गुणों विद्याओं से सुभूषित है। तू हम पुरुषों को देव बनाने के लिये हमें सुकृत का उपदेश कर। तू अदिति है अदिति का अर्थ महर्षि यास्क ने– **अदितिरदीना देवमाता** (निरु. 4/4) जो अदीन है अर्थात् धर्म कर्म में अखण्डित है, कभी दीन नहीं होती तथा देवों का निर्माण करने वाली है उस का नाम अदिति बताया है। सरस्वती तो कहते ही विद्या की अधिष्ठात्री विदुषी स्त्री को हैं और विद्वान् या विदुषी कौन होता है? जो शास्त्रज्ञ हो, वेद का ज्ञाता हो। इसीलिये कोई पुरुष भी यदि विद्वान् हो, अच्छा प्रवक्ता हो तो उसके लिये इनके ऊपर सरस्वती देवी की कृपा है अथवा इनके कण्ठ में सरस्वती विराजमान है, यह कहा जाता है। पर यदि स्त्री को ही वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है तो उसे विदुषी या सरस्वती कैसे कहा जा सकता है?

और जहाँ तक प्रकृति से लड़ने की बात आपने कही है तो मैं कहना चाहूँगी कि इसमें प्रकृति से लड़ने जैसी कोई बात नहीं है। प्रकृति ने तो स्त्री-पुरुष का भेद केवल सृष्टि परम्परा को बनाये रखने के लिये किया है। ज्ञान को ग्रहण करने के लिये तो ज्ञानेन्द्रियों की आवश्यकता है तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इस अन्तःकरण चतुष्टय की आवश्यकता है जिसमें प्रकृति ने कोई भेद नहीं किया है। ऐसा नहीं है कि पुरुषों की दो आँखें या दो कान हैं तो स्त्रियों के एक आँख और एक कान। हाँ! प्रजनन के हिसाब से अंगविशेष की, आशय विशेष की रचना है जिसकी आवश्यकता केवल उसी के लिये है पर इससे विद्या ग्रहण या धर्म-कर्म करने में स्त्री के लिये कोई बाधा प्रकृति ने उत्पन्न की हो ऐसी बात नहीं है। रह गई बात उन तीन-चार दिनों की! जिनके कारण स्त्रियों को अपवित्र माना जाता है। मैं कहना चाहती हूँ, वह तो अंगविशेष का कार्य है। जैसे अंगविशेष से प्रतिदिन मल-मूत्र त्याग करने पर भी कोई अपवित्र नहीं माना जाता। उसी प्रकार अंगविशेष से सम्बद्ध इन तीन दिनों की प्रक्रिया से भी किसी को अपवित्र मान कर उसे सदा के लिये वेदाध्ययन से वञ्चित नहीं किया जा सकता है। शरीर के अन्य

अंगों की तरह यह भी शरीर के अंगविशेष का स्वाभाविक धर्म है। इसमें प्रकृति से लड़ने जैसी कोई बात कत्तई नहीं है।

अब बात जब शास्त्र की और अमन्त्रक-समन्त्रक की आयी तो एक बार पंडित जी फिर उठ खड़े हुए और कहने लगे– आखिर मन्त्रपूर्वक संस्कार कराने की इतनी प्रतिबद्धता क्यों? जबकि श्लोकों में भी तो वही बात कही गई है। फिर मैंने भी पलट कर कहा– मैं पूछना चाहती हूँ अपने पण्डित जी से कि आखिर वे कौन से ऐसी गुप्त शिक्षा या संस्कार हैं जिनका बोध मन्त्र बोलकर आप बालकों को तो कराना चाहते हैं पर बालिकाओं को नहीं? यदि स्त्रियाँ मन्त्र नहीं पढ़ेंगी तो क्या अन्नप्राशन संस्कार में जहाँ–

ओं प्राणाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। अपानाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥
चक्षुषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥ श्रोत्राय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥
अग्नये स्विष्टकृते त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥

इन पाँच मन्त्रों को बोलकर चावल को साफ करने फिर **प्राणाय त्वा जुष्टं निर्वपामि, अपानाय त्वा जुष्टं निर्वपामि** आदि पाँच मन्त्रों को बोल कर बालक के लिये चावल पकाने का विधान है। वहाँ क्या बालक (पुरुष) के लिये स्त्री नहीं बल्कि पुरुष मन्त्र बोलकर चावल धोएगें-पकाएंगे? और केवल बालिका के लिये ही स्त्री चावल पकायेगी? क्या यह भी विधान आपके शास्त्रों में है? इस पर वे नतमस्तक हो, चुप होकर बैठ गये। फिर मैंने कहा, संस्कारों का उद्देश्य मानव का सम्पूर्ण निर्माण, उसका सर्वाङ्गीण विकास करना है, उसे उसके जीवन के उद्देश्य धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष से जोड़ना है, उसे अपने जीवन के अन्तिम उद्देश्य मोक्ष तक की सिद्धि का पथ-सोपान बताना है और इसमें स्त्री-पुरुष लिङ्ग का कोई भेद वेदों में नहीं है।

इस दृष्टि से महर्षि देव दयानन्द ने प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिये पक्षपात रहित होकर सोलह संस्कारों का विधान किया है। उपनयन के बाद वेदारम्भ जिसमें चारों वेदों का अध्ययन कराया जाता है वह सब के लिये, चाहे वह

स्त्री हो या पुरुष, समान रूप से विहित है। अनन्तर विद्या की समाप्ति पर समावर्त्तन संस्कार न कि केशान्त और फिर विवाह संस्कार का विधान किया है। **प्रायः सभी गृह्य सूत्रों में विवाह को अन्तिम संस्कार माना गया है जबकि आधुनिक भारत के निर्माता युगपुरुष महर्षि दयानन्द ने इसमें संशोधन करके विवाह के बाद वानप्रस्थ और संन्यास संस्कार तथा अन्त में अन्त्येष्टि संस्कार का विधान किया है।** महर्षि ने जीवन की सम्पूर्णता को लक्ष्य करके इन दोनों संस्कारों को बढ़ाया है। गृहस्थ आश्रम में ही जीवन बिता देना मनुष्य जीवन की सम्पूर्णता नहीं है, इस दृष्टि से वानप्रस्थ और संन्यास इन दोनों संस्कारों का महर्षि ने विधान किया है। संसार भोगने के बाद धीरे-धीरे संसार से विरक्ति तथा अध्यात्म में प्रवृत्ति होनी ही चाहिये। तभी मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस् धर्म के इन दोनों पक्षों की सिद्धि कर सकता है। **यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः**[1] कणाद ने धर्म का यही लक्षण बताया है। तभी **भोगापवर्गार्थं दृश्यम्**[2] इस दृश्यमान जगत् के भोग और अपवर्ग, भोगना और त्यागना इन दोनों अर्थों की सिद्धि हो सकती है जिसके लिये परमेश्वर ने इस दृश्यमान जगत् की रचना की है। जीवन की इहलीला समाप्त होने पर **भस्मान्तं शरीरम्**[3] इस वैदिक आज्ञानुसार मन्त्रोच्चारपूर्वक अन्त्येष्टि संस्कार का भी विधान उन्होंने अपनी संस्कार विधि में किया है जिससे मृत्यु के क्षणों में भी आत्मा संस्कारित, परिशोधित होकर जाये। शरीर भस्म होने के बाद कोई और औत्तरदेहिक श्राद्ध पिण्डदानादि क्रिया शेष नहीं है, इससे यह भी उन्होंने स्पष्ट कर दिया जबकि गृह्य सूत्रों में इनका लम्बा-चौड़ा विधान है।

इस सम्पूर्ण वाद प्रतिवाद से महिलायें बहुत प्रसन्न हुईं और कहने लगीं– बहुत अच्छा लगा, विशेष रूप से जो आपने गुरुजी लोगों से प्रश्न किया,

---

1. वै.द. 1/1/2
2. यो.द. 2/18
3. यजु. 40/15

बहुत अच्छा हुआ, सारी बातें साफ हो गईं। क्या हम लोग आपके पास आकर मन्त्रोच्चार और संस्कार आदि सीख सकती हैं? मैंने कहा– हाँ!। इससे पूर्व एक सत्र में पञ्चमहायज्ञादि नित्य कर्म व सम्पूर्ण आचार-विचार के विषय में मैंने बताया था, वे बोलीं– असली शिक्षा और संस्कार तो यही है जो हमें प्रतिदिन करना है। किसी दिन विशेष में एक सवा घण्टे की पूजा व संस्कार कराने मात्र से किसी के जीवन का निर्माण नहीं हो सकता। आपने बहुत अच्छा बताया, हमें बहुत अच्छा लगा आदि आदि।

कार्यक्रम के अन्त में गुरुजी, जिनसे अभी तक मैं प्रश्न कर रही थी, उन्हीं से मुझे ज्ञात हुआ उनकी पत्नी व बच्चे भी संस्कृत में सम्भाषण करते हैं। बहुत अच्छा लगा, वे सपत्नीक बड़े प्रेम व सम्मानपूर्वक मिले और बड़ी विनम्रतापूर्वक मेरा सामान स्वयं उठाकर साथ चलने लगे और रात्रि अपने घर पर ही विश्राम, आतिथ्य ग्रहण करने का भी आग्रह करते रहे।

इसी क्रम में प्रथम दिन जब मैंने स्त्रियों के अमन्त्रक-समन्त्रक संस्कार पर प्रश्न किया था तो अगले दिन कोई पण्डित जी बीस तीस पन्नों का एक पुलिन्दा मुझे देने के लिये पकड़ा गये थे कि मैं स्त्रियों के वेदाध्ययन के विषय में यह मानता हूँ– पर अन्तिम क्षणों में जब मेरा भाषण हो रहा था, वे वहाँ उपस्थित नहीं थे। मैं उनसे पूछना चाहती थी कि यह पुलिन्दा जो कि स्त्रियों के वेदाध्ययन का समर्थक है, यह आपका इण्टरनेट से निकाला हुआ संग्रह है या आपका स्वयं का विचार है। पर वे नहीं थे जिस पर उपस्थित गुरु जी ने ही उत्तर दिया कि यह उनका संग्रह मात्र है विचार नहीं। अस्तु।

इस प्रकार 16 संस्कारों का विधान मनुष्य मात्र को पूर्णता प्रदान करने के लिये है। इसमें किसी प्रकार का पक्षपात न परमेश्वर को अभिप्रेत है न उसकी वेदाज्ञा का पालन करने वाले महर्षि को है। **इतिहास साक्षी है, महाभारत काल से पूर्व तक इस देश की नारियाँ ब्रह्मवादिनी ऋषिका,**

वेदप्रवक्त्री विदुषी, चारों वेदों की ज्ञाता ब्रह्मा, अरण्यानी (वानप्रस्थी) प्रव्राजिका (संन्यासिनी) तक रही हैं। आज पुरुषों से अधिक स्त्रियों को सुशिक्षित, सुसंस्कृत, शास्त्रज्ञ, वेद विदुषी बनने की आवश्यकता है जिससे बच्चों में अच्छे संस्कार बनें, अपना देश फिर से अपने पुरातन गौरव-वैभव को प्राप्त करे। यह तभी सम्भव है जब नारियाँ महर्षि के स्वप्नों को, वैदिक आदर्शों को समझेंगी और उसे साकार करने का प्रयास करेंगी।

पाणिनि कन्या महाविद्यालय की स्थापना के पीछे उसकी संस्थापिका वेदविदुषीमणि, महिलारत्न **आचार्या डा. प्रज्ञा देवी, आचार्या मेधा देवी जी** का यही उद्देश्य था। इसी उद्देश्य से इसी 5 मार्च को उनकी 75वीं जयन्ती पर अपने पाणिनि कन्या महाविद्यालय में अध्ययनरत देश-विदेश की 30 कन्याओं का उपनयन व वेदारम्भ संस्कार सम्पन्न कर हमने कन्याओं में उसी उद्देश्य व परम्परा को प्रतिफलित करने का प्रयास किया है। आप सबका भी दायित्व है कि इस प्रकार की संस्थायें जो कन्याओं को वैदिक आर्ष परम्परागत शिक्षा देने का कार्य कर रही हैं वे फलती-फूलती रहें, इसका प्रयास करें। मैं तो जहाँ भी जाती हूँ, मुझे लगता है, लोग व्यक्तिगत रूप से यथासम्भव ऐसे कार्यों को, ऋषि के मिशन को आगे बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील हैं, यह देखकर मेरा हृदय आह्लादित हो जाता है। कृपया प्रसन्नता बाँटें और प्रसन्न रहें।

***

महर्षि पाणिनि प्रभा
पत्रिका के सम्पादकीय से उद्धृत

महिला जागृति सम्मेलन

16 दिसम्बर 2012, दिल्ली में हुई गैंगरेप की घटना ने पूरे विश्व को हिलाकर रख दिया, वह अमानवीयता और पैशाचिकता की सभी सीमाओं को लाँघ चुकी है जिसकी सारे विश्व ने निन्दा की है, फिर भी हर दिन ऐसी ही घटनाएं निरन्तर जारी हैं। सच तो यह है कि आज ऐसी घटनाओं की बाढ़ आ चुकी है, लोग बहुत आगे बढ़ चुके हैं। इसमें केवल दो प्रतिशत ही ऐसी घटनायें सामने आती हैं, शेष दब जाती हैं या दबा दी जाती हैं। कारण, आज भी भारतीय जन-जीवन में ऐसी घटनाओं को शर्मनाक माना जाता है। माता-पिता, परिवार के लोग इसे अपनी इज्जत समझते हैं, बस यही कहा जा सकता है। अन्यथा आज की शिक्षा में जहाँ संस्कारों की बात करना घोंचूपना समझा जाता है, जहाँ पुरानी पीढ़ी के लोग दकियानूस समझे जाते हैं, आज भी जहाँ बुजुर्ग महिलायें सिर पर पल्लू रखे बिना स्वयं को उघाड़ी समझती हैं, वहीं आज की युवती अपनी जांघों को दिखाने और छाती खोल कर चलने में स्वयं को प्रगतिवादी समझती है। आज की पीढ़ी के सामने पुराने लोग स्वयं को बौना समझते हैं। कई अर्थों में बात सही भी है आज का तीन-चार साल का बच्चा भी मोबाइल, कम्प्यूटर, इन्टरनेट से खेलता है जबकि पुरानी पीढ़ी के लोग इन्हें हाथ लगाने में भी कांपते हैं पर बात संस्कारों की है। सोचना यह है कि हम कितनी भी प्रगति कर लें यदि हमारे अन्दर सही शिक्षा और संस्कार नहीं है वो परिवेश वो माहौल नहीं है जिसमें मानवता पनपती है, स्वार्थ से हट कर परस्पर त्याग व सहयोग की भावना होती है, रिश्तों की अहमियत होती है उनमें गहराई होती है तो सब व्यर्थ है।

लोग कहते हैं पहले की महिलायें पढ़ी नहीं होती थीं पर कढ़ी होती थीं। उनमें संस्कारों की सुगन्ध होती थी उनके परिवारों में मर्यादाओं के फूल खिलते थे। हमने वृद्धों को नकार दिया जबकि चाणक्य का सूत्र कहता है– **वृद्धसेवया विज्ञानम्** वृद्ध सेवा से विज्ञान उत्पन्न होता है, **विज्ञानेन**

आत्मानं सम्पादयेत् और उस विज्ञान से आत्मनिर्माण होता है और आत्मनिर्माण (व्यक्ति निर्माण) ही परिवार समाज और राष्ट्र का निर्माण है।

यह वही देश है जिस पर दुनियाँ को नाज था, जो चरित्र की कसौटी था, जहाँ शिक्षा का मानक चरित्र माना जाता था, जहाँ विश्व के लोग इस धरती पर चरित्र की शिक्षा प्राप्त करने आते थे।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥[1]

मनु महाराज का यह उद्घोष सर्वथा सत्य था। स्वयं हमारी आचार्या (डा. प्रज्ञा-मेधा देवी) जी कहा करती थीं– बेटा! पढ़ाई दो पैसा कम करना चलेगा, पर चरित्र के साथ कोई समझौता नहीं। यहाँ शिक्षा अष्टांग योग पर आधारित थी, बालक को सत्य की डोरी से बाँधकर धर्माचरण की शिक्षा तथा ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी जाती थी। यहाँ माता-पिता बच्चों को परस्पर सम्मान करना सिखाते थे, बड़े भाई को पिता के समान दर्जा दिया जाता था।

रामायण की वह घटना आज भी हमारे लिये मानक है– जब श्रीराम भगवती सीता के साथ 14 वर्ष के वनवास के लिये निकलते हैं, लक्ष्मण भी साथ हैं। लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा का अन्तिम चरणस्पर्श करने जाते हैं उस समय माता सुमित्रा विह्वल होकर अपने पुत्र लक्ष्मण को यह आश्वासन व सन्देश देते हुए कहती हैं–

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥[2]

अर्थात् ऐ पुत्र लक्ष्मण! तुम भैया के साथ जंगल में जा रहे हो, जाओ! सुखपूर्वक जाओ, और याद रखना! तुम्हारे पिता दशरथ सदा तुम्हारे साथ हैं तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम के रूप में, मैं तुम्हारी माता भी तुम्हारी वात्सल्यमयी भाभी सीता के रूप में सदा तुम्हारे पास हूँ और जब ये दोनों

---

1. मनु. 1/139
2. अयो. वा.रा. 36/8

तुम्हारे साथ हैं तो जंगल में भी मंगल हो जायेगा, जंगल ही तुम्हारे लिये अयोध्या का राजमहल बन जायेगा। इस सम्मान जनक मर्यादा का पालन सभी भाई परस्पर सदा से करते आये थे तभी जब रावण सीता का अपहरण करके ले गया, रास्ते में सीता अपने आभूषणों को मार्ग दिखाने के लिये फेंकती गई जिसे उठाकर जब लक्ष्मण से उन आभूषणों की पहचान कराने की बात आई तो लक्ष्मण कहते हैं–

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।।[1]

अर्थात् मैं माता सीता के कुण्डल केयूर आदि को नहीं पहचानता, हाँ! उनके द्वारा पैर की अंगुलियों में धारण किये उनके नूपुर, बिछुये को जानता हूँ क्योंकि मैं नित्य उनका चरण स्पर्श करता था। यह थी हमारी शिक्षा और संस्कृति।

यह वही देश है जहाँ स्त्रियों के सम्मान में पुरुषों को नसीहत देते हुए कहा जाता था कि–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।[2]

जहाँ नारियों का सम्मान होता है वहाँ देवताओं का वास होता है, इसलिये यदि तुम इस धरती पर देवों की प्रतिष्ठा चाहते हो, स्वयं को देव कहलाना चाहते हो तो नारियों का हृदय से सम्मान करो। याद रखना! जहाँ नारियों का सम्मान (पूजा) नहीं होता वहाँ कोई भी क्रिया फलीभूत नहीं होती। आज घर-घर में विद्यमान देवतुल्य माता-पिता का सम्मान करना लोगों ने छोड़ दिया, देवी स्वरूपा माँ, बहन, बेटी, पत्नी की इज्जत को भी धूल चटा दी और घर से बाहर पूजा सामग्री लेकर देवी-देवता की दुकान लगाकर

---

1. वा.रा. किष्किन्धा काण्ड 5/19
2. मनु. 3/56

बैठ गये, पूजा को भी एक दुकानदारी के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। अपने यहाँ संस्कृत के चार लाइन के श्लोकों में भी कितनी ऊँची बात होती थी!

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

इस श्लोक में पराई स्त्री को माँ के समान, पराये द्रव्य को मिट्टी के ढेले के समान, सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान जो देखता है वही पण्डित होता है, यह कहा है। इस छोटे-से श्लोक में आचार-विचार की, चरित्र की सारी शिक्षा दे दी गई। पर केवल श्लोक रटने से तो कभी कुछ नहीं होता। इसी के लिये गुरुकुल होते थे जहाँ दुनियादारी गृहस्थी की बातें छोड़कर बच्चे को संयम-नियम-सदाचार के साँचे में ढाला जाता था। हमारे देश में विद्वान् होना बड़ी बात नहीं थी, जो शास्त्रज्ञ होते थे उन्हें तो मात्र शिष्ट कहा जाता था किन्तु **यस्तु क्रियावान् स एव विद्वान्** जो उन शास्त्रों पर चलता था, क्रियावान् आचरणशील होता था, वही विद्वान् (जानानः) कहा जाता था और ऐसे विद्वान् तपस्वी का सर्वत्र सम्मान होता था।

महिला जागृति सम्मेलन

30 सितम्बर 2012 को आत्म शुद्धि आश्रम बहादुरगढ़ में महिला जागृति सम्मेलन था। बहिनों ने मुझे ही सम्मेलन का अध्यक्ष बनाया था। सम्मेलन बहुत अच्छा, शानदार रहा। महिलाओं की उपस्थिति बहुत अच्छी थी। लोगों ने कहा भी कि ऐसी उपस्थिति यहाँ पहले कभी नहीं हुई। वहाँ अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में मैंने कहा– महिलाओं की जागरूकता का प्रमाण आज जिस रूप में मिल रहा है वह राष्ट्र के निर्माण में उनकी सहभागिता कम, पुरुषों से बराबरी करने की भावना को अधिक दर्शाता है। इस बराबरी की होड़ से महिलाओं का आत्माभिमान कम उनकी आत्महीनता व कुण्ठा अधिक प्रदर्शित हो रही है, जिस पर समझदारी से नियन्त्रण आवश्यक है। आज की नारी बौखलाई हुई, हम नहीं किसी से कम के

अन्दाज में तन-मन से अपने नारीत्व को भी पीछे छोड़ पुरुषों को ही अपना आदर्श मान उन्हीं के समान जीन्स, पैंट, शर्ट पहने निर्बाध गति की कामना लिये अनेक सामाजिक अपराधों को जन्म देती व स्वयं उनमें संलिप्त होती दृष्टिगोचर हो रही है।

वेद की नारी तेजस्विनी नहीं है, ऐसा नहीं है। वह जल में विद्युत् के समान अप्सरा (अप्सु सरतीति) का रूप धारण किये बाहर से मन्द, शीतल, कोमल होती हुई परिवार, समाज, राष्ट्र को सुख, शान्ति, सन्तोष, एकता का पाठ पढ़ाती, समय आने पर अपनी अस्मिता की रक्षा के लिये बिजली के समान वज्र प्रहार कर मिनटों में काम तमाम करने की भी सामर्थ्य रखने वाली दैवी शक्ति से सम्पन्न है। नारी को इसी रूप में जागृत करने की आवश्यकता थी। उसे विद्या सुशिक्षा सुसंस्कारों से पूर्ण प्रबल बनाने की आवश्यकता थी। उसका अस्तित्व घर में है घर के निर्माण में गृह के प्रबन्धन में है क्योंकि गृहमन्त्रालय स्वयं में एक महत्वपूर्ण विभाग है।

हर नारी अपने घर की गृहमन्त्री ही नहीं साम्राज्ञी है, जिसके अन्तर्गत बहुत से विभाग हैं, उन विभागों का वह स्वयं विभक्तीकरण और नियंत्रीकरण करती है। जिसके अभाव में आज हमारे परिवार टूट रहे हैं, परिवार की मर्यादा छिन्न-भिन्न हो रही हैं, पारिवारिक धर्म-कर्म समाप्त हो रहे हैं। ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ जैसे नित्यकर्मों के लिये आज नारियों के पास समय नहीं है। धर्मपत्नी आज धर्म की रक्षिका न होकर केवल अर्थ पर ध्यान केन्द्रित किये हुए हैं और अर्थ की ही पालिका-पोषिका (अर्थ पत्नी) नजर आ रही है। आज बच्चे दिशाहीन हो रहे हैं, ईश्वर प्रणिधान क्या है? आस्तिकता और समर्पण का आदि और अन्त कहाँ है? उन्हें नहीं पता, उनका स्वास्थ्य चौपट हो रहा है उन्हें नहीं पता, वे मनोरंजन कैसे करें किसके साथ करें वे नहीं जानते। आज दादा-दादी और नाना-नानी ओल्ड फैशन की तरह घर से या तो निर्वासित हो गये हैं या एक

तरफ उपेक्षित हैं या फिर पैसा कमाने के लिये स्वयं बेटा-बहू ही अपने माता-पिता को घर में अकेला छोड़ कहीं बाहर निकल गये हैं। एक तरफ बच्चे तड़प रहे हैं तो दूसरी तरफ बूढ़े, पर कोई उपाय इनके पास नहीं है। जबकि एक गृहिणी के सुशिक्षित सुपठित होने का अर्थ सुसन्तान का निर्माण करना और संयुक्त परिवार की एकता मर्यादा को बनाये रखना है।

जिस राष्ट्र निर्माण व चरित्र निर्माण की मूल आधार नारी थी आज वह कहीं खो गई है। आज चरित्र दाँव पर लग चुका है। चरित्र निर्मात्री स्वयं अपने चरित्र को बेचने के लिये अर्थ लिप्सा में घर की दीवारें लाँघ चुकी है। वह स्वयं अपनी (स्त्री) जाति की ही दुश्मन बन भ्रूण हत्या करने और करवाने पर तुली हुई है। ये समाज की विसंगतियाँ हैं जिन्हें दूर करने के लिये ऐसे महिला जागृति सम्मेलनों की आज नितान्त आवश्यकता है।

दूसरी बात, आज न केवल कन्याओं को संस्कारित करने की आवश्यकता है अपितु उससे कहीं अधिक बालकों को सुसंस्कृत बनाने की आवश्यकता है जो नारियों का सम्मान कर सकें। तभी हमारा समाज मानव समाज बन सकता है अन्यथा पाशवी वृत्ति आज मनुष्यों पर हावी हो चुकी है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

***

महर्षि पाणिनि-प्रभा
पत्रिका के सम्पादकीय से उद्धृत

जी-न्यूज़ चैनल पर शास्त्रार्थ (वीडियो कान्फ्रेंस)

महिलायें और कर्मकाण्ड

पिछले दिनों एक चर्चा छिड़ी थी महिलाओं को कर्मकाण्ड कराने का अधिकार है या नहीं। इलाहाबाद के न्यायालय में यह विवाद गया था कि पुरुषों की तरह अब महिलायें भी घाट पर महामात्र का क्रियाकर्म कराने लगी हैं जो कि उचित नहीं है, यह पुरुष महामात्रों व पण्डितों का कहना था पर न्यायालय ने, महिलायें भी सभी कर्मकाण्ड करा सकती हैं, इसके समर्थन में अपना अन्तिम निर्णय अप्रैल मास 2012 में दे दिया तो पण्डित समाज में एक बार फिर खलबली मच गयी। इसी क्रम में जहाँ काशी में अपने विद्यालय से अनेक बार मणिकर्णिका, हरिश्चन्द्र आदि घाटों पर अन्त्येष्टि संस्कार कराते, विद्यालय में कन्याओं का यज्ञोपवीत, वेदारम्भ संस्कार, कन्याओं द्वारा विवाह, मुण्डन, नामकरण, गृहप्रवेश आदि संस्कार कराते रहने की सूचना प्रसारित होते रहने के कारण जब मेरे पास जी-न्यूज चैनल के अधिकारी जन आये और इस सम्बन्ध में मेरे सप्रमाण सकारात्मक विचार जाने तो कहा कि सायंकाल सनातन धर्म के काशी के **पण्डित अशोक द्विवेदी** के साथ जो कि उस समय नोएडा में थे, वीडियो कान्फ्रेंस कराने के लिये हम आपके विद्यालय में आ रहे हैं। यह कहकर वे चले गये। मैंने इसे हल्के में ही लिया था, ठीक है जो आयेंगे जवाब दे दिया जायेगा।

फिर रात्रि 9 बजे गहमागहमी शुरू हुई और हमारा परिचय देते हुए एंकर ने पण्डित जी से पूछा कि पुरुषों के समान महिलायें भी कर्मकाण्ड करा सकती हैं इस विषय में आपका क्या अभिमत है? उन्होंने पाणिनि कन्या महाविद्यालय का नाम सुनते ही कहा– हाँ! हाँ! मैं उस विद्यालय को जानता हूँ, उसकी संस्थापिका आचार्या **डॉ. प्रज्ञा देवी** जी को भी जानता हूँ, वे मेरी सहाध्यायिनी रही हैं। मैंने भी पूज्य गुरुवर्य **श्री पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु** जी

के दर्शन किये हैं, उनसे पढ़ा है, 40 वर्षों से यह कन्या महाविद्यालय चल रहा है, मुझे पता है। ये लोग सब कर्मकाण्ड कराती हैं, करा रही हैं ठीक है पर यह शास्त्रसम्मत नहीं है, कन्यायें मन्त्रों का उच्चारण नहीं कर सकतीं। उत्तर में मेरे यह कहने पर कि नारी को वेद में ब्रह्मा कहा गया है– **स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ**[1] यह वेद का वचन है। श्रौतग्रन्थों में ब्रह्मा, अध्वर्यु, होता, उद्गाता– ये चार ऋत्विक् कहे गये हैं जो बड़े-बड़े यज्ञों को सम्पन्न कराते हैं, उनमें ब्रह्मा का स्थान सर्वोच्च होता है। वह चारों वेदों का ज्ञाता होता है, उसी की अध्यक्षता में सम्पूर्ण यज्ञ सम्पन्न होता है। यही नहीं नारी को **यज्ञस्य केतुः**[2] यज्ञ की पताका कहा है। वेद के शब्दों में पुरुष समाज उससे प्रार्थना करता है– **देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्।**[3] हम मनुष्यों को देव बनाने के लिये तू हमें सुकृत का उपदेश कर तथा **भगवती हि भूयाः अधा वयं भगवन्तः स्याम**[4] हे नारी! तू भगवती बन जा जिससे हम पुरुष भगवान् बन सकें आदि प्रार्थनायें की गई हैं। जहाँ परमेश्वर मैं इस कल्याणी वाणी का प्रवचन **जनेभ्यः** जन-जन के लिये कर रहा हूँ, यह कहा है। **यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः**[5] यजुर्वेद का यह मन्त्र इसमें प्रमाण है। तो क्या जन में स्त्रियाँ नहीं आतीं? उनके लिए वेद नहीं है? आदि अनेक प्रमाण सहित जब मैंने अपनी बात रखी तो वे कहने लगे– हाँ! हाँ! मुझे ये प्रमाण पता है, पर यदि स्त्रियाँ मन्त्रोच्चारण करेंगी तो एक टेक्नीकल प्राब्लम है मेरे पूछने पर कि वह प्राब्लम क्या है? वे बोले, ऐसी स्त्रियाँ पुत्रवती नहीं होंगी। सुनकर बड़ी हँसी आई। मैंने कहा– अपने महाविद्यालय से अनेक स्नातिकायें आचार्या बनकर निकल चुकी हैं। वे सभी गृहस्थ आश्रम में जाकर पुत्रवती

---

1. ऋ. 8/33/19
2. ऋ. 1/113/19
3. यजु. 8/43
4. अथर्व. 7/73/11
5. यजु. 26/2

हैं, जबकि वे गर्भावस्था से पहले ही नहीं गर्भकाल में भी दैनिक यज्ञ, मन्त्रोच्चारण व वेद का स्वाध्याय करती रही हैं, आज भी कर रही हैं।

फिर वे कहने लगे– असल में ये लोग आर्यसमाजी हैं। इनसे पूछिये यदि ये कर्मकाण्ड का समर्थन कर रही हैं तो क्या ये संकटमोचन मन्दिर में जाकर हनुमान चालीसा और सुन्दरकाण्ड का पाठ करेंगी? क्या ज्योतिर्लिङ्ग में जाकर पूजा करवायेंगी? क्या विश्वनाथ मन्दिर में रुद्राभिषेक करवायेंगी आदि आदि। मैंने कहा यहाँ बात आर्य समाज की नहीं हो रही है बात वेदों की हो रही है कि वेद इस सम्बन्ध में क्या कहता है? मैंने वेद के प्रमाण दिये हैं यदि आप उनको काट सकते हैं तो काटिये अन्यथा आप जो कहें वह मान्य हो जायेगा, ऐसा नहीं है। सत्य तो यह है, वेद ईश्वरीय ज्ञान है, वेद को स्वयं शंकराचार्य जी ने स्वीकार किया है–

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्न अन्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात्।[1]

इस वेदान्त दर्शन के सूत्र का भाष्य करते हुए उपसंहार रूप में उन्होंने लिखा है–**वेदस्य हि निरपेक्षं स्वार्थे प्रामाण्यं रवेरिव रूपविषये। पुरुषवचसां तु मूलान्तरापेक्षम्। तस्माद्वेदविरुद्धे विषये स्मृत्यनकाशप्रसङ्गो न दोषः।**

अर्थात् वेद अपने विषय में बिना किसी की अपेक्षा किये स्वयं प्रमाण है जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश को प्रमाणित करने के लिये किसी प्रकाशान्तर की अपेक्षा नहीं है। किन्तु मनुष्यों के वचन तो मूलान्तर अर्थात् प्रमाणान्तर की अपेक्षा रखते हैं इसलिये वे परतः प्रमाण हैं। इस प्रकार वेद से विरुद्ध विषय में मनुष्यकृत कोई स्मृति या शास्त्र यदि अनवकाश सिद्ध होता है, यह दोष उत्पन्न होगा, यदि कोई कहे तो यह ठीक नहीं। तो क्या आप आद्य शंकराचार्य से भी ऊपर हैं? इस पर वे बोले– मैं इनकी बात से सहमत नहीं हूँ मैं तो वही मानूँगा जो निर्णय सिन्धु धर्मसिन्धु में लिखा हे। हाँ! यदि सभी शंकराचार्य मिलकर निर्णयसिन्धु को गलत सिद्ध कर दें और स्त्रियों को

1. वेदान्त द. 2/1/1

वेदाध्ययन, मन्त्रोच्चारण का अधिकार है, इसे प्रमाणित कर दें और उसमें अपेक्षित परिवर्तन कर दें तो हम इनकी बात मानने के लिये तैयार हैं अन्यथा नहीं। मैंने फिर कहा– क्या शंकराचार्य भगवान् से ऊपर हैं? क्या निर्णयसिन्धु धर्मसिन्धु वेद से भी ऊपर है? और क्या वर्त्तमान शंकराचार्यों को आप आद्य शंकराचार्य से भी अधिक मान्य और प्रतिष्ठित मानते हैं? इस बीच कई बार वे यह भी बोले, असल में ये लोग आर्यसमाजी हैं, दयानन्द को मानते हैं, जिनके जन्म लिये स्थापित हुए अभी मात्र डेढ़-दो सौ वर्ष हो रहे हैं। मैंने फिर कहा– देखिये! आप मुद्दे से हट रहे हैं बात को विषयान्तर कर रहे हैं, यहाँ बात आर्यसमाज और दयानन्द की नहीं, वेद और भगवान् की हो रही है। मैं आर्यसमाज और दयानन्द को यदि मानती हूँ तो इसलिये क्योंकि उन्होंने वेद की बात की और अपनी बात को वेद से पुष्ट किया, वेद के अनुकूल होने पर ही कोई मेरी बात को माने अन्यथा नहीं, यह उनका स्पष्ट कथन था। अस्तु।

फिर वे इस बात पर जोर देने लगे कि यदि मैं कर्मकाण्ड का समर्थन करती हूँ तो इनसे पूछिये क्या ये मन्दिर में सुन्दरकाण्ड का पाठ करेंगी? नहीं करेंगी, क्योंकि ये आर्यसमाजी हैं। तब मैंने कहा– हाँ! हम सुन्दरकाण्ड का पाठ नहीं करूँगी, और करें भी क्यों? क्या आपको नहीं पता है सुन्दरकाण्ड रामायण का एक भाग है, रामायण एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है जिसकी रचना महाकवि वाल्मीकि ने की है जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र जी का वर्णन है। मैं पूछना चाहती हूँ कि उस निराकार सर्वव्यापक जगन्नियता परब्रह्म परमेश्वर की स्तुति में किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ के एक भाग के पाठ करने का आखिर क्या औचित्य है? आप बता सकते हैं। यदि नहीं, तो हम वेदमन्त्रोच्चारण को छोड़ कर किसी मनुष्यकृत सुन्दरकाण्ड, हनुमान चालीसा, विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र आदि का पाठ क्यों करें? इस पर कोई उत्तर न देकर उन्होंने बात को आगे बढ़ाया, ये लोग मन्त्रों को गा-गाकर बोलती हैं, इन्हें मन्त्रोच्चारण नहीं आता, ये 100 मन्त्र भी सही ढंग से नहीं बोल सकतीं।

मैंने कहा–आप 100 मन्त्रों की बात करते हैं मेरे पीछे ब्रह्मचारिणियाँ बैठी हुई हैं वे आपको 100 नहीं चार सौ मन्त्र पढ़कर अभी तत्काल सुनायेंगी। बताइयेगा कहाँ गलत है। बात यहीं पर समाप्त हो गई क्योंकि चैनल वालों का समय पूरा हो गया था और वे मेरे बगल में मेरे सामने नहीं बैठे थे। जी-न्यूज चैनल के माध्यम से हम तो हेडफोन लगाये केवल एक दूसरे की बात सुन रहे थे और उत्तर दे रहे थे।

अखिल भारतीय ब्राह्मण महिला सम्मेलन–

इसके बाद अप्रैल मास में ही 28-29 ता. 2012 को एक अखिल भारतीय ब्राह्मण महासम्मेलन का आयोजन दिल्ली के रामलीला मैदान में आयोजित हुआ था, इसमें मुझे भी काशी से ब्राह्मण महिला प्रतिनिधि के रूप में वक्तृत्व देने के लिये आमन्त्रित किया गया था। सम्मेलन के दूसरे दिन ब्राह्मण महिला सम्मेलन का आयोजन था **पं. कमलाकान्त उपाध्याय** राष्ट्रीय महासचिव केन्द्रीय ब्राह्मण महासभा वाराणसी ने मुझे आमन्त्रित किया था। दूसरे दिन कार्यक्रम स्थल पर पहुँचने पर देखा मंच पर पुरुषों का एकाधिपत्य है। किसी प्रकार मंच को उनके आधिपत्य से मुक्त कराया गया। क्योंकि मुझे सूचना मिली थी महिला सम्मेलन 11 बजे से आरम्भ होगा। एक घण्टा, आधा घण्टा करते-करते 3 बजे के बाद लगभग 4 बजे, वह भी बीच में ही कुछ वक्ताओं को थोड़ी देर के लिये रुकवाकर यह महिला सम्मेलन कराया गया। जिसमें 5-6 महिलायें वक्त्री के रूप में उपस्थित थीं।

मैंने अपने वक्तव्य में सर्वप्रथम आयोजकों को धन्यवाद दिया। इतने बड़े ब्राह्मण महाकुम्भ में उन्होंने अर्धाङ्ग को याद रखा और उन्हें भी अपने विचार रखने का अवसर प्रदान किया। अस्तु। आज ब्राह्मण समाज अपनी दुरवस्था से चिन्तित है। उसे उच्च पदस्थ अन्य जातियों की अधीनता और उनकी कृपापात्रता का दंश झेलना पड़ रहा है। अन्य दलित जातियों को आरक्षण के कारण योग्यता होते हुए भी ब्राह्मणों को पिछड़ेपन को अंगीकार करना

पड़ रहा है। एक समय था जब देश समाज में ब्राह्मणों का आधिपत्य था। पर कब? जब ब्राह्मण तपस्वी, वेदज्ञ, कुम्भीधान्य, अलोलुप थे। केवल जाति से ब्राह्मण नहीं। **'ब्रह्म अधीते वेद वा यस्स ब्राह्मणः'** जो ब्रह्म अर्थात् वेद का अध्ययन करता है, उसी के प्रचार-प्रसार में अपना जीवन लगाता है और वैदिक आचार-विचार का पालन करता है उसको ही ब्राह्मण समझा। ऐसा ब्राह्मण समाज और क्षत्रिय (राजा) को दिशा निर्देश करता था, तब वह समाज का सिरमौर मुख माना जाता था और वेद के शब्दों में यह कहने का अधिकारी होता था–

न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन[1] अर्थात् ब्राह्मण की गौ (वाणी) को मारकर उसकी आज्ञा का उल्लंघन कर कोई राष्ट्र में जीवित जागृत नहीं रह सकता। राजा का वह स्वयं राज्याभिषेक करता था और कहता था कि आज से तुम इस सम्पूर्ण राज्य के सभी प्रजाजनों के स्वामी हो पर ध्यान रखना! तुम हम ब्राह्मणों के अधीश नहीं हो, **सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा**[2] हम ब्राह्मणों का राजा तो वह सोम परब्रह्म परमेश्वर है। यह सब कुछ सतयुग, त्रेता, द्वापर तक चला। महाभारत के बाद आज से ढाई-तीन हजार वर्ष पूर्व से ब्राह्मणों का पतन आरम्भ हो गया। वे भूल गये कि ब्राह्मण के साथ-साथ क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी समाज के अभिन्न अंग हैं। यदि ब्राह्मण इस समाज का, राष्ट्र का सिर है तो क्षत्रिय इस देश की भुजा हैं, जो इस देश समाज के प्रहरी बनकर दिन-रात सीमा पर तैनात होकर हमारी रक्षा करते हैं। वैश्य इस समाज का उदर (पेट) है, उनके बिना हम सब भूखे-नंगे हैं, क्योंकि समाज की आवश्यकता के अनुसार विभिन्न उद्योगों को स्थापित करना, कृषिकर्म करना इनके अधीन है, देश की समृद्धि के ये मूल आधार हैं। इन सबको द्विज कहा जाता था, ये सब गुरुकुलों में जाकर आचार्य के सान्निध्य में रह कर शिक्षा-दीक्षा को पूर्ण कर आचार्य की कुक्षि से दूसरा जन्म

1. अथर्व. 5/19
2. यजु. 9/40

लेने के कारण द्विज कहलाते थे, ब्राह्मण भी द्विज बनने के बाद ही ब्राह्मण कहलाता था। चौथा शूद्र इस समाज का मूल आधार स्तम्भ माना जाता था। समाज में सबकी पूरी अहमियत थी, सम्मान था, समाज के सब अभिन्न अंग थे, सबको सबकी आवश्यकता थी और आज भी है।

शूद्र का भी निर्माण होता था। वेद में कहा गया है **तपसे शूद्रम्**[1] जो तपस्वी हो उसे ही शूद्र कह सकते हैं। आज हम समाज में यदि दिखने लायक हैं तो इन चमार, लोहार, दर्जी, धोबी, नाई, बढ़ई आदि शूद्रवर्ग की कृपा से हैं। मनुष्य को मनुष्य दिखने लायक शूद्र ही बनाता है। ब्राह्मण यानी सिर, समाज का कितना ही महत्वपूर्ण अंग हो पर वह बिना हाथ-पैर के लूला और लंगड़ा है, हम यह भूले गये। हमने पहले अर्धाङ्ग को काटा स्त्रियों को वेदाध्ययन के अधिकार से वञ्चित किया उन्हें अपवित्र मान वैदिक कर्मकाण्ड से पृथक् किया फिर शूद्रों को, फिर धीरे-धीरे क्षत्रिय, वैश्य सबको काट कर अलग कर दिया। इनका यज्ञोपवीत नहीं हो सकता, ये वेद नहीं पढ़ सकते आदि कहा गया तो ये भी मुर्गा बन कर पण्डित जी के सामने हलाल होने के लिये बैठ गये। एकेश्वर पूजा के स्थान पर कोई गोबर गणेश की पूजा करा रहा है, कोई तुलसी शालिग्राम का विवाह करा रहा है, कोई हनुमान चालीसा पढ़ रहा है, कोई सुन्दरकाण्ड का पाठ कर रहा है, क्यों? क्योंकि इनको वेद पढ़ने ही नहीं सुनने का भी अधिकार नहीं है। और आज स्वयं समाज से कट गये समाज की सुविधाओं से वञ्चित होने लगे। आज यदि ब्राह्मण का महत्व कम हुआ है तो स्वयं अपने कर्मों से, अपने पैरों पर उसने स्वयं कुल्हाड़ा मारा है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है–

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्याद् अन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति।

अर्थात् वेदों के अनभ्यास, वैदिक आचार विचार के परित्याग, आलस्य

1. यजु. 30/5

तथा अन्न के दोष (श्राद्ध भोजन, मांस-मदिरा सेवन आदि) से आज ब्राह्मण मृत्यु के मुख में जा रहा है। हमें इन कारणों पर विचार करना होगा, सबको समाज का महत्वपूर्ण अंग मान कर सम्मान व अधिकार देना होगा तभी हम अपनी रक्षा व अपने अधिकार की बात कर सकेंगे। इस चिन्तन में हम महिलायें ब्रह्मवादिनी गार्गी, सुलभा, घोषा, मैत्रेयी बन कर आपके साथ हैं। एक बार फिर आयोजकों का धन्यवाद जिन्होंने अर्धाङ्ग के महत्व को समझा और इस ब्राह्मण महाकुम्भ में उन्हें आमन्त्रित किया।

सुनकर सब बहुत गद्‌गद थे, कहने लगे– अरे! आप अभी तक कहाँ थीं, आपसे तो हमें बहुत पहले मिलना चाहिये था इससे हमारा कार्य बहुत आगे बढ़ता। इसी प्रकार आप लोगों का आना जाना मिलना बना रहा तो हमें बहुत कुछ सीखने समझने को मिलेगा आदि आदि।

***

जून 2012 **महर्षि पाणिनि प्रभा**
पत्रिका के सम्पादकीय में प्रकाशित

नारियों के उत्थान में महर्षि दयानन्द और आर्य समाज का योगदान

इस विषय पर कुछ लिखने से पूर्व तत्कालीन भारत में स्त्रियों की क्या स्थिति थी? इस विषय पर दृष्टिपात करना आवश्यक होगा क्योंकि मुसलमानों के आक्रमण से तत्कालीन भारत में जहाँ प्राचीन सांस्कृतिक गुरुकुलीय परम्पराओं का धीरे-धीरे सर्वथा विलोप हो गया था वहीं नारियाँ इन विदेशी आक्रान्ताओं की वासना का शिकार भी हो रही थीं। परिणाम स्वरूप नारी जाति की पवित्रता और सुरक्षा को दृष्टिगत कर समाज में बालविवाह का बोल-बाला बढ़ रहा था और उसके दुष्परिणाम स्वरूप बाल विधवाओं की कतार, उनका करुण क्रन्दन और उन पर सामाजिक प्रतिबन्धों का शिकञ्जा भी बढ़ता जा रहा था। इसी के साथ एक नई कुप्रथा सती-प्रथा जिसके तहत मृतक बूढ़े पुरुष के साथ युवती अथवा बाल-विधवा को जबर्दस्ती चारों तरफ लट्ठ लेकर खड़े समाज के व्यवस्थापक पुरुषों के द्वारा अग्नि देव की भेंट कर दिया जाता था और चीखती-चिल्लाती नारियाँ ये अमानवीय अत्याचार सहन करने के लिए विवश थीं। कोई उनका पक्षधर न था। स्वयं घर की बड़ी-बूढ़ी नारियाँ इस प्रकार की आचार संहिता का पालन बड़ी कठोरता के साथ करने-करवाने में समाज का पूरा सहयोग करती थीं। वे इसे कुल परम्परा, सामाजिक नियम-कानून, रीति-रिवाज, कुल पुरोहितों की आज्ञा का उल्लंघन मानती थीं व इन धार्मिक व्रतादेशों को पाप-पुण्य से जोड़कर देखती थीं।

इस प्रकार तत्कालीन समाज में स्त्रियों को शिक्षा के अधिकार से सर्वथा वञ्चित ही नहीं किया गया अपितु अपने देश के धुरन्धर विद्वान् तो इसे शास्त्रीय मान्यता प्रदान करने में लगे हुए थे। वे प्राचीन वेद-उपनिषद् आदि ग्रन्थ जिनमें नारियों को सम्मानित तथा जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ने, उन्नति करने की पूर्ण सुविधा, स्वतंत्रता और आज्ञा ही नहीं प्राप्त थी अपितु

उन्हें समाज की, राष्ट्र की, विश्व की, उन्नति का आधार माना गया था। उन वेदादि सत्य ग्रन्थों का नये सिरे से भाष्य व उन पर टीका-टिप्पणी लिखते हुए हर ऐसे प्रसंग को जिसमें नारी को ब्रह्मचर्य, दीक्षा, यज्ञोपवीत, वेदाध्ययनादि का पूर्ण अधिकार था ये तथाकथित विद्वान् उनकी नई व्याख्या प्रस्तुत कर रहे थे और किसी भी प्रकार उन सत्यशिक्षा प्रतिपादक वाक्यों को काटना ही इन्होंने अपना उद्देश्य बना लिया था। यही नहीं, इनके समर्थन में नित नए कपोल-कल्पित वाक्य श्लोक **'शिव उवाच', 'ब्रह्मा उवाच' इति श्रुतिः, इति स्मृतिः**, कह-कहकर समाज के सामने परोस रहे थे और **पराशरी स्मृति, शीघ्रबोध, कन्योपनयन निषेध** जैसे नवीन ग्रन्थों की रचना कर समाज को गहरे पतन के गर्त में गिरा चुके थे। परिणामस्वरूप बिहार और बंगाल आदि में तो यह अन्धविश्वास प्रचलित हो गया था कि जिन स्त्रियों को पढ़ना-लिखना सिखाया जाएगा वे शीघ्र ही विधवा हो जायेंगी आदि।

दूसरी तरफ 18वीं शताब्दी के अन्त अथवा 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही शिक्षा के नाम पर अंग्रेजी स्कूलों व मिशनरी स्कूलों का बढ़ना आरम्भ हो गया था जिसमें अंग्रेजों के साथ-साथ अपने भारतीय राजा राममोहन राय जैसे अंग्रेजी पढ़े-लिखे नवयुवक भी योगदान कर रहे थे जिनका उद्देश्य भारतवासियों को शिक्षित करना कम ईसाई बनाना ज्यादा था। ऐसे समय में महर्षि देव दयानन्द का इस धरती पर आगमन एक पुण्यात्मा का अवतार ही कहा जा सकता है।

जिन्होंने अपने ब्रह्मचर्य बल व तप से भारत की गिरती हुई सम्पूर्ण तस्वीर को कारण सहित जान-परख़ लिया था। और 44 वर्ष की परिपक्व अवस्था में पूरी तैयारी के साथ प्रकट रूप से ललकारते हुए समाज की दुर्दशा पर चहुँमुखी वार किया था जिसका लिखित रूप आज हम सबके समक्ष **सत्यार्थ प्रकाश** नामक ग्रन्थ के रूप में उपलब्ध है जिसमें स्थान-स्थान पर

उन्होंने स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। परिवार में चाहे वह सन्तानों की शिक्षा हो, पठन-पाठन की व्यवस्था हो, ब्रह्मचर्य की दीक्षा, गृहस्थाश्रम की विधि आदि कोई भी प्रकरण हो उन्होंने नारी जाति के सामाजिक प्रतिबन्धों के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई और उसे शास्त्रीय मान्यता प्रदान कर समाज में नई चेतना, नई क्रान्ति का बीज बोया।

सत्यार्थ प्रकाश का दूसरा समुल्लास, जिसका विषय **सन्तानों की शिक्षा** है उसका आरम्भ ही महर्षि देव दयानन्द ने **'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद'** इस शतपथ ब्राह्मण के वचन से किया है। वे इसका अर्थ करते हुए वहाँ लिखते हैं? कि **प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता यस्य स मातृमान्** अर्थात् प्रशंसनीय धार्मिक विदुषी माता है जिसकी वह सन्तान मातृमान् अर्थात् मैं माता वाला हूँ इस गौरव बोध को प्राप्त करता है। आगे वे लिखते हैं कि–

जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है,उतना किसी से नहीं। धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो, तब तक सुशीलता का उपदेश करे। वे लिखते हैं– **वह कुल धन्य! वह सन्तान भाग्यवान्! जिसके माता और पिता दोनों धार्मिक विद्वान् हों।**

वे नारी को समाज के निर्माण की प्रथम धुरी मानते थे। इसीलिए तृतीय समुल्लास जो कि सामान्य रूप से ब्रह्मचर्य पठन-पाठन की विधि व्यवस्था का निर्देश करता है वहाँ स्थान-स्थान पर लड़कों के साथ-साथ लड़कियों का भी उल्लेख करना नहीं भूलते। उनका यह आरम्भिक निर्देश अक्षर ज्ञान से आरम्भ होता है। वे लिखते हैं–

जब पाँच वर्ष के लड़का और लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करायें। आगे जब आठ वर्ष के हों तभी लड़कों को लड़कों की और **लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेज देवें।** 'द्विज अपने घर

में लड़कों का यज्ञोपवीत और **कन्याओं का भी यथायोग्य यज्ञोपवीत संस्कार करके आचार्यकुल में भेज देवें।'** फिर आगे पाँचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने **लड़कों और लड़कियों को घर में न रखे,** यह राजनियम और जाति नियम होना चाहिये। आगे पिता-माता वा अध्यापक अपने **लड़के-लड़कियों को अर्थ सहित गायत्री मन्त्र का उपदेश कर दें।**

लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से दूर होनी चाहिये। कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में सब पुरुष रहें। चाहे वे राजकुमार या राजकुमारी हों सबको वहाँ तुल्य वस्त्र, खान-पान आसन दिया जाये, आदि सर्वत्र शिक्षा-दीक्षा के सम्बन्ध में दोनों का लड़कों के साथ लड़कियों का समानरूप से उल्लेख किया है।

सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में बाल-विवाह पर लिखे गये—

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा तु रोहिणी।
दशवर्षा भवेत् कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥

अर्थात् आठवें वर्ष में कन्या गौरी, नौ वर्ष में रोहिणी, दस वर्ष में कन्या और उसके बाद रजस्वला हो जाती है। और जो माता-पिता और बड़ा भाई घर में ऐसी कन्या को देख लेता है वह नरक चला जाता है। उत्तर में महर्षि ने भी जैसे को तैसा उत्तर देते हुए ये श्लोक लिखे-

एकक्षणा भवेद् गौरी द्विक्षणेयं तु रोहिणी।
त्रिक्षणा सा भवेत् कन्या ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला॥
माता पिता तथा भ्राता मातुलो भगिनी स्वका।
सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥

और कहा कि यह सद्योनिर्मित ब्रह्मपुराण का वचन है, इसे 'ब्रह्म

उवाच'- साक्षात् ब्रह्मा जी कह रहे हैं कि नवजात स्त्री शिशु एक क्षण पहले गौरी, दूसरे क्षण रोहिणी, तीसरे क्षण कन्या और चौथे क्षण वह रजस्वला हो जाती है और ऐसी कन्या को देखकर माता-पिता-भ्राता ये तीन ही नहीं मामा और बहन भी नरक को प्राप्त होते हैं। अब इसका क्या करोगे तुम? इसलिए **इन कपोलकल्पित बातों को छोड़कर वेदों के प्रमाण से काम लिया करो।** देखो वेद में कहा है-

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।[1]

अर्थात् कन्या ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन के द्वारा धर्म-कर्म की शिक्षा प्राप्ति के अनन्तर स्वयं युवती होकर युवा पति को प्राप्त करे।

सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में– जो स्त्री और शूद्र पढ़ेंगे तो हम क्या करेंगे? इसके उत्तर में महर्षि लिखते हैं– **"तुम कुआँ में पड़ो, किन्तु पढ़ने का अधिकार मनुष्य मात्र को है।"** देखो श्रौतसूत्रादि में- **'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्'** अर्थात् यज्ञ में इस मन्त्र को पत्नी पढ़े, कहा है। **जो स्त्रियाँ वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवें तो यज्ञ में स्वरसहित मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृत भाषण कैसे कर सकें? भारत की स्त्रियों में भूषण रूप गार्गी आदि वेदादि-शास्त्रों को पढ़के ही पूर्ण विदुषी हुई थीं** यह शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है।

आगे वे लिखते हैं– भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी, और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो, तो घर में नित्य प्रति देवासुर-संग्राम मचा रहे, फिर सुख कहाँ? और भी यदि स्त्रियाँ नहीं पढ़ेंगी तो कन्याओं की पाठशाला कौन चलाएगा? वे राजकार्य, न्यायादि करने में सहयोग कैसे देंगी? गृहस्थाश्रम के धर्म का निर्वाह भी बिना पढ़े असम्भव है। **देखो! आर्यावर्त्त के राजपुरुषों की स्त्रियाँ धनुर्वेद अर्थात् युद्ध विद्या भी अच्छी तरह जानती थीं। क्योंकि जो न जानती होतीं तो कैकेयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध**

---

1. अथर्व. 11/5/18

में क्योंकर जा सकतीं, और युद्ध कर सकतीं? इसलिए जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिए वैसे ही स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिए। यही नहीं महर्षि वेद का भाष्य करते हुए वाचक लुप्तोपमालंकार के द्वारा मंत्रों का व्यावहारिक (आधिभौतिक) अर्थ करते हुए उसे स्त्री के कर्त्तव्य का बोधक व नारियों के उत्थान परक सिद्ध करने में अपना हृदय उड़ेल देते हैं। उदाहरण स्वरूप यजुर्वेद अध्याय 8 का पहला मन्त्र द्रष्टव्य है। इसके भावार्थ में महर्षि लिखते हैं–

सब ब्रह्मचर्याश्रम सेवन की हुई युवती कन्याओं को ऐसी आकांक्षा अवश्य रखनी चाहिये कि अपने सदृश रूप-गुण-कर्म-स्वभाव और विद्यावाला और अपने से अधिक बलयुक्त अपनी इच्छा के अनुरूप योग्य पुरुष को अंतःकरण से स्वीकार करके उसकी सेवा किया करें।

इस छोटे से भावार्थ में महर्षि ने बालविवाह का विरोध, ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक स्वयंवर विवाह का समर्थन व विद्यार्जन का समान अधिकार वेद के माध्यम से नारी जाति को देने की चेष्टा की है। इसी प्रकार यजुर्वेद के इसी 8वें अध्याय के मंत्र में जिसमें 11 विशेषणों से नारी को सम्बोधित किया है, मंत्र है–

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥[1]

प्रथम इसका पदार्थ देखें– हे **अघ्न्ये**-ताड़ना न देने योग्य, **अदिते**-आत्मा से विनाश को प्राप्त न होने वाली, **ज्योते**-श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान, **इडे**-प्रशंसनीय गुणयुक्त, **हव्ये**-स्वीकार करने योग्य, **काम्ये**-मनोहर स्वरूप, **रन्ते**-रमण करने योग्य, **चन्द्रे**-अत्यंत आनन्द देने वाली, **विश्रुति** अनेक अच्छी बातें और वेद को जानने वाली, **महि**-अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य,

1. यजु0 8/43

सरस्वति-प्रशंसित विज्ञान वाली पत्नी! उक्त गुण प्रकाश करने वाले, **ते**-तेरे, **एता**-ये, **नामानि**-नाम हैं तू, **देवेभ्यः**-उत्तम गुणों के लिए, **मा**-मुझ को, **सुकृतम्**-उत्तम उपदेश, **ब्रूतात्**-किया कर।

इसके भावार्थ में महर्षि दयानन्द लिखते हैं– **जो विद्वानों से शिक्षा पाई हुई स्त्री हो वह अपने-अपने पति और अन्य सब स्त्रियों को यथायोग्य उत्तम कर्म सिखलावे जिससे किसी तरह वे अधर्म की ओर न डिगें। वे दोनों स्त्री पुरुष विद्या की वृद्धि और बालकों तथा कन्याओं को शिक्षा किया करें।**

इस प्रकार महर्षि देव दयानंद ने नारी विषयक मध्यकालिक वर्जनाओं का विरोध करके वेदकालिक पूर्ण समर्थ स्वतंत्र नारी की अवधारणा को अपने लेखन व भाषण के माध्यम से समाज के सामने रखा।

उनका अनुगमन करते हुये आर्य समाज के दीवाने व दयानन्द के सैनिकों ने न केवल बालकों अपितु कन्याओं के लिए भी **सर्वप्रथम जालन्धर में कन्या महाविद्यालय की स्थापना की**। इस तात्कालिक स्थापना के पीछे जो तीव्र कारण था वह 26 जनवरी 1886 को महात्मा मुंशी राम जी (बाद में स्वामी श्रद्धानन्द) द्वारा लिखित डायरी से पता चलता है। वे लिखते हैं- कचहरी से लौटकर जब मैं घर आया तो वेद कुमारी मेरी बेटी दौड़ी हुई आयी और जो भजन वह पाठशाला से सीखकर आई थी सुनाने लगी–

एक बार ईसा ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल?
ईसा मेरा राम रमैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया।।

पूछने पर पता लगा कि इन स्कूलों में वैसे गीतों के साथ-साथ अपने शास्त्रों की निंदा करना भी सिखाया जाता है। इस प्रकार हिन्दुओं की नई पीढ़ी को ईसाइयत के रंग में रंगने के प्रयास को विफल करने तथा कन्याओं

को अपने धर्म व वैदिक संस्कृति की शिक्षा देने के लिए जालन्धर आर्य समाज में सर्वप्रथम एक आर्य कन्या महाविद्यालय स्थापित करने का निर्णय लिया गया। जिसमें **महात्मा मुंशीराम जी** प्रधान तथा **लाला देवराज जी** मंत्री थे। दोनों का स्वभाव एक था वे जो सोचते थे उसे कर दिखाते थे। कुछ समय बाद महात्मा मुंशी राम तो गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना में संलग्न हो गये किन्तु लाला देवराज जी कन्या महाविद्यालय को साकार करने में ही सर्वात्मना जुट गये। उस समय कन्याओं को शिक्षा देना उनका घर से बाहर निकलना उन्हें दुश्चरित्र बनाना और उनकी मर्यादा को भंग करना समझा जाता था। ऐसी स्थिति में लाला देवराज मिठाई, खिलौने, मेवा आदि जेबों में भरकर बड़े सबेरे घर से निकल जाते और परिचित बन्धुओं की लड़कियों को किसी प्रकार लालच देकर विद्यालय में आने के लिये उत्साहित करते थे। पर एक दिन किसी प्रकार एक कन्या आती तो दूसरे दिन उसका कोई सम्बंधी उसे उठाकर ले जाता चार पाँच साल तक यही क्रम चलता रहा तब कहीं कन्या पाठशाला चल पाई। यह सब **आर्य समाज का इतिहास** तृतीय भाग में लिखित द्रष्टव्य है।

इसी प्रकार धीरे-धीरे सभी राज्यों में यहाँ तक कि बंगाल में भी आर्य कन्या विद्यालय तत्कालीन आर्य जनों के जोश व दीवानगी से खोले और चलाये गये। और आज तो अनेक कन्या गुरुकुल तथा आर्य कन्या इण्टर कालेज, डिग्री कालेज आदि खुल गये हैं खुल रहे हैं। बालविवाह सती प्रथा पर भी रोक लगी है। विधवा विवाह का प्रचलन भी घोर सनातनी पुरातनपन्थी ब्राह्मणों तक के घर में हुआ है। इसके लिये एक पृथक् एक्ट शारदा एक्ट के नाम से **श्री रामविलास शारदा** आदि आर्य सैनिकों के अथक प्रयास से प्रचलित हुआ है। इसके अतिरिक्त आर्य समाज के विद्वानों विदुषियों द्वारा अपने प्रवचनों, लेखों, **उरुधारा नारी** (लेखिका– **डा. प्रज्ञा देवी**, वाराणसी) जैसे अनेक ग्रन्थों व भजनोपदेशकों द्वारा अनेक कुप्रथा

निवारक तत्तत् क्षेत्रीय भाषाओं में रचित गीतों के माध्यम से स्त्री शिक्षा का पर्याप्त प्रचार प्रसार हुआ है। फिर भी नारियों के उत्थान का जो प्रतिफल होना चाहिये था वह समाज में नहीं दिख रहा है यह खेद का विषय कहा जा सकता है।

आज दहेज प्रथा, लिंग परीक्षण और कन्या भ्रूण हत्या जैसे अपराध समाज में प्रचलित हैं जो कि नारियों के प्रति समाज की चिन्तन धारा आज भी शोचनीय है इस बात का ज्ञापक है, कहा जा सकता है। आज नारियों का मातृ रूप कहीं खोता जा रहा है उनकी शालीनता का चीरहरण अंगप्रदर्शन के माध्यम से दूरदर्शनों पर परोसा जा रहा है। परिणाम नारियों का मानसिक उत्पीड़न, यौन शोषण, बलात्कार सरे आम चीत्कार रहा है। आज आवश्यकता है हर कन्या विद्यालयों में दयानन्दीय वैदिक दृष्टि की तभी समाज **मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद** इस वचन को साकार कर पायेगा और मेरा देश ऋषि मुनियों का संरक्षक रामराज्य बन पायेगा तथा तभी–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥[1]

इस मनु महाराज के उद्घोष के अनुसार जब नारियों की पूजा होगी तब यह धरती देवों का निवास स्थान बन पायेगी।

***

1. मनु. 3/56

बिना अपराध आजीवन कारावास

27 मई 2013 को जब सुलभ इण्टरनेशनल सोशल सर्विस आर्गनाइजेशन नई दिल्ली द्वारा सुलभ के संस्थापक **डा. बिन्देश्वर पाठक** के नेतृत्व में– **'विधवा जीवन– बिना अपराध आजीवन कारावास'** विषय पर एकदिवसीय संगोष्ठी का आयोजन काशी विद्यापीठ वाराणसी में किया गया जिसके प्रथम सत्र में **विधवा जीवन– धर्मशास्त्रीय दृष्टि** पर **प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय** अध्यक्ष, शोध एवं प्रकाशन विभाग श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली की अध्यक्षता में विषय की उपस्थापना के लिये **डा. कामेश्वर उपाध्याय**, संयोजक, अखिल भारतीय विद्वत्परिषद्, वाराणसी को आमन्त्रित किया गया। काशी के अनेक विद्वानों के बीच इस गोल मेज कान्फ्रेंस में जब मैं वहाँ पहुँची तो डा. कामेश्वर उपाध्याय जी ने लगभग जबर्दस्ती ही मुझे अपने पास यह कह कर बुला लिया कि अरे! धर्मशास्त्रीय दृष्टि पर विवेचन है! आपका रहना तो आवश्यक है, मैं सहज भाव से बैठ गई। सत्र आरम्भ हुआ, डा. उपाध्याय जी ने बड़ी गर्मजोशी के साथ विषय का उपस्थापन किया और कहा कि धर्मसिन्धु में पूरा एक पेज विधवाओं पर है वहाँ विधवाओं को बहुत ही सम्मान दिया गया है, उन्हें ब्रह्मचारी का स्थान दिया गया है। जिस प्रकार एक ब्रह्मचारी विषयपराङ्मुख होकर तपस्यापूर्वक जीवन व्यतीत करता है उसी प्रकार विधवाओं को भी अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये, वे चाहें तो मोक्ष के लिये भी प्रयत्नशील हो सकती हैं आदि आदि।

इस पुरुष प्रधान सभा व समाज में मुझे आमन्त्रित तो कर लिया गया था पर कुछ विचार व्यक्त करने का समय देना आयोजकों के लिये कठिन ही नजर आ रहा था। मैंने विषय उपस्थापक महोदय के वक्तव्य पर मुझे प्रश्न करना है यह कह कर समय मांगा तो बड़ी कठिनाई से संयोजक महोदय **डा. ब्रह्मानन्द चतुर्वेदी** ने केवल 5 मिनट कह कर मुझे माइक थमा

दिया। जबकि इस संगोष्ठी के समायोजक **डा. बिन्देश्वर पाठक** ने विरोध करते हुए कहा– नहीं ये जितना बोलना चाहें, इन्हें बोलने का समय दिया जाये। मैं खड़ी हुई, मैंने कहा– मैं पूछना चाहती हूँ अपने विषय उपस्थापक महोदय, अखिल भारतीय विद्वत्परिषद् के संयोजक डा. कामेश्वर उपाध्याय जी से कि **विधवाओं के लिये ही ब्रह्मचारियों जैसा तपस्वी जीवन क्यों? विधुरों के लिये क्यों नहीं? विधुर क्यों नहीं मोक्ष की अभिलाषा और उसके लिये यत्नशील हों?** आज समाज में बहुत से परिवर्त्तन हुए हैं, हो रहे हैं, अभी इसी सभा में जिन कन्याओं को वेद पढ़ना तो दूर उन्हें वेदमन्त्र सुनने तक की आज्ञा नहीं थी, यदि वे सुन लेंगी तो विधवा हो जायेंगी, आदि बातें प्रचारित थीं आज उसी सभा में **आप सब विद्वानों के मध्य अपने पाणिनि कन्या महाविद्यालय की ब्रह्मचारिणियाँ वैदिक मंलगाचरण करके गईं, आप सबने सुना, मुग्ध हुए, आपने इसे स्वीकारा।** उसी प्रकार अन्य सामाजिक, धार्मिक परिवर्त्तन भी हम क्यों नहीं स्वीकार कर लेते? आज आवश्यकता है, हम ऐसे परिवर्त्तनों को स्वीकार करें। आप सब विद्वत्समाज के अधिकारी यहाँ बैठे हैं इससे अच्छा अवसर और क्या होगा इन विषयों पर निर्णय करने का?

मैंने उन्हें बताया कि पिछले वर्ष महिलाओं को कर्मकाण्ड कराने का अधिकार है या नहीं, इस विषय पर जी. न्यूज चैनल द्वारा वीडियो कांफ्रेंस कराई गई जिसमें एक तरफ मैं थी, दूसरी तरफ नोएडा (गाजियाबाद) में बैठे **पं. अशोक द्विवेदी**। वे कह रहे थे, **यदि स्त्रियाँ मन्त्रोच्चारण करेंगी तो एक टेक्नीकल प्राब्लम आयेगी।** वह क्या? मेरे पूछने पर उन्होंने कहा कि– **फिर स्त्रियाँ पुत्रवती नहीं होंगी। फिर वे बोले– यदि सभी धर्माचार्य शङ्कराचार्य मिल कर निर्णय सिन्धु और धर्मसिन्धु में परिवर्त्तन कर दें तो मैं महिलाओं के वेदाध्ययन व कर्मकाण्ड कराने की बात को स्वीकार कर लूँगा।** मैंने कहा **क्या आपके धर्मसिन्धु, निर्णयसिन्धु ग्रन्थ वेद से ऊपर हैं? क्या आपके शंकराचार्य जी**

भगवान् से ऊपर हैं? जिन्होंने स्पष्ट रूप से वेदों को स्वतः प्रमाण व अन्य ग्रन्थों को परतः प्रमाण वेदों के अनुकूल होने पर ही प्रमाण माना है। फिर भी आप लोगों का यह दुराग्रह! आखिर क्यों? यह तो नारियों का धार्मिक उत्पीड़न है जो धर्मशास्त्र के नाम पर आज भी विद्वानों द्वारा प्रचारित व मान्य होता आ रहा है। **कहने को ब्रह्मचारी जैसा सम्मान विधवाओं को दिया गया है पर व्यावहारिक तौर पर किसी भी मांगलिक कार्य में क्या विधवाओं को आमन्त्रित या सम्मिलित किया जाता है?** नहीं, यहाँ तक कि **स्वयं अपनी बेटी का कन्यादान करने में एक माँ हिचकती है, समाज के धर्म के भय से वह इस अवसर पर चाचा-चाची, मामा-मामी मौसा-मौसी, भैया-भाभी आदि किसी अन्य सम्बन्धी को इस कार्य के लिये आगे कर देती है।** बात करते हैं ब्रह्मचारियों जैसे सम्मान की! **क्या आज तक किसी विधवा को ब्रह्मचारियों के समान सम्मानपूर्वक विशेष रूप से ऐसे कार्यक्रमों में आमन्त्रित किया गया है?** कभी नहीं। महामहोपाध्याय **प्रो. शिवजी उपाध्याय** जो राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त काशी विद्वत्परिषद् के महामन्त्री हैं वे भी उस सभा में उपस्थित थे। वे मेरे खड़े होते ही यह कहते हुए मेरे सामने से गुजरे कि आपका समय हो गया है आप अपनी बात को संक्षिप्त करिये, कहने का मतलब महिलाओं के अधिकार पर एक महिला का वह भी विदुषी महिला का बोलना उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था, अखर रहा था।

मैं तो कहूँगी **धन्य हैं आधुनिक युग के महान् क्रान्तिकारी, समाज के नायक, सुलभ के संस्थापक डा. बिन्देश्वर पाठक जी जिन्होंने न केवल मैला ढोने वाली महिलाओं की वकालत कर उन्हें सामान्य जनजीवन में ढाला, उन्हें देश ही नहीं विदेश तक की यात्रा करा दी, राष्ट्रपति भवन तक पहुँचा दिया, काशी विश्वनाथ मन्दिर में घुसा दिया, ब्राह्मणों के साथ उनका सहभोज करा दिया अपितु इसी क्रम में पिछले वर्ष विधवा महिलाओं की दुर्दशा को देखते हुए इलाहाबाद हाई कोर्ट के कहने पर मथुरा, वृन्दावन, काशी की हजारों**

विधवा महिलाओं को भी नारकीय जीवन से उबार कर उन्हें प्रतिमास 2000/ रु. तक की सहायता राशि, एम्बुलेन्स चिकित्सा आदि की सुविधा तत्काल देकर उन्हें भी सामान्य जीवन जीने का, होली खेलने आदि का सौभाग्य प्रदान कर दिया। इस सभा में उन्होंने इसी मुद्दे को विशेष रूप से उठाकर पण्डितों से अपेक्षा की कि विधुरों के समान इन्हें भी पुनर्विवाह करने, सौभाग्यपूर्ण जीवन जीने की अनुमति प्रदान करें तथा तदनुकूल धार्मिक ग्रन्थों में भी परिवर्त्तन करें। कहते हैं, **समरथ को नहीं दोस गुसाईं** तो ये पाठक जी तो ब्राह्मण भी हैं, समृद्ध भी, इसलिये सब पण्डित यहाँ एकत्रित हो ही गए। दक्षिणा का लाभ भी तो प्राप्त करना ही था अन्यथा भगवान् ही मालिक है इन पोंगापन्थी धर्मभीरु पण्डितों का।

महिला उत्पीड़न कारण एवं निवारण

लगभग यही विषय **'महिला उत्पीड़न : कारण एवं निवारण'** पर 28 जुलाई, रविवार 2013 को बनारस क्लब में **भारत विकास परिषद् काशी प्रान्त** द्वारा महिला समागम का आयोजन किया गया जिसमें विशिष्ट अतिथि के रूप में मुझे आमन्त्रित किया था। मुझे बहुत अच्छा लगा जब काशी प्रान्त की विभिन्न शाखाओं से महिलाओं ने भी अपने लिखित विचार इस विषय पर रखे। इससे पूर्व भी इसी प्रकार का आयोजन बड़े उत्साह से भारत विकास परिषद् के सभी भाई बहिनों ने मिल कर किया था। तब भी मुझे ही निर्णायक व विशिष्ट अतिथि के रूप में आमन्त्रित किया था। अस्तु।

वहाँ मैंने यही विचार रखे कि यद्यपि– महिला-उत्पीड़न के कई प्रकार हो सकते हैं– (1) शारीरिक उत्पीड़न (2) मानसिक उत्पीड़न (3) मौखिक उत्पीड़न (4) यौन उत्पीड़न (5) पारिवारिक उत्पीड़न (6) सामाजिक उत्पीड़न (7) धार्मिक व सांस्कृतिक उत्पीड़न आदि आदि। ये सभी उत्पीड़न जो कि कभी दहेज की बलि वेदी, कभी सती प्रथा, कभी भ्रूणहत्या, कभी बालविवाह, कभी विधवा जीवन, कभी बलात्कार आदि के रूप में विकराल रूप धारण करते रहते हैं जिसके विषय में हम प्रायः समाचार पत्रों में पढ़ते

व विभिन्न न्यूज चैनलों में देखते रहते हैं। आज सुशिक्षित समाज में जो कुछ हो रहा है वह अत्यन्त ही निन्दनीय, दिल को दहला देने वाला व बीभत्स है। आज दरिन्दे क्या कर गुजरेंगे, नहीं कहा जा सकता है।

पर प्रश्न होता है यह स्थिति कब से उत्पन्न हुई? क्यों उत्पन्न हुई? क्या जब से इस धरती पर मानव ने जन्म लिया है तब से यह विभेद, यह उत्पीड़न नारियों के साथ होता आ रहा है? नहीं। तो इधर कुछ सौ वर्षों से जब से बाहरी (मुस्लिम आदि) आक्रमण आरम्भ हुये तभी से धीरे-धीरे यह स्थिति उत्पन्न हुई। बाहर के आक्रान्ताओं से नारियों को सुरक्षित रखने के लिये उन्हें पर्दे में रखने का उपक्रम किया गया और धीरे-धीरे उन्हें घर की चारदिवारी में कैद कर दिया गया। अब वे बाहर नहीं निकल सकती थीं, नहीं पढ़ सकती थीं। उन पर प्रतिबन्ध थोपे जाने लगे यहाँ तक कि वे सूरज की रोशनी भी नहीं देख सकती थीं, उन्हें **असूर्यम्पश्याः** कहा जाने लगा।

बात यहीं तक रहती तो भी ठीक था पर नहीं धर्माचार्यों ने तो लिखित रूप से नारी को नरक का द्वार बता दिया– **द्वारं किमेकं नरकस्य? नारी,** नरक का द्वार कौन है तो नारी। उन्होंने तो बाल विधवा और सती प्रथा के समर्थन में वेद मन्त्रों में परिवर्तन करने तक का पाप कर डाला। सती प्रथा के समर्थन में वे जो मन्त्र देते हैं, वहाँ स्पष्ट रूप से **आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे** (ऋ. 10/18/7) यह पाठ है, इसका अर्थ है स्त्रियाँ आगे बढ़ें, यहाँ **योनिमग्रे के स्थान पर योनिमग्नौ** करके इन पण्डितों ने, स्त्रियाँ अग्नि में आरोहण करें यह अर्थ कर दिया और कह दिया कि वेद में स्त्रियों के सती होने की आज्ञा है।

आज न केवल हिन्दू समाज अपितु अन्य (मुस्लिम आदि) समाजों में भी नारियों को इसी प्रकार के उत्पीड़न झेलने के लिये मजबूर किया जाता है। जबकि वैदिक युग का उद्घोष था–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

अर्थात् जहाँ नारियों का सम्मान होता है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ इनकी पूजा नहीं होती वहाँ सभी क्रियायें फलरहित, निष्फल हो जाती हैं। वहाँ देव तो क्या मनुष्य भी नहीं, पशुओं का ही वास होता है। वह समाज पशु समाज, पशुबली कहलाने लगता है। इस प्रसंग में महर्षि देव दयानन्द ने स्त्रीशिक्षा का समर्थन ही नहीं किया अपितु जब लोग उनसे पूछने आये कि **यदि स्त्रियाँ वेद पढ़ेंगी तो हम क्या करेंगे?** तो उत्तर में वे लिखते हैं– **तुम कुआँ में पड़ो पर इनको पढ़ने दो**। महर्षि दयानन्द के हृदय में जो वैदिक नारी की परिकल्पना थी वह पूर्ण नहीं हो सकी। मध्य में ही अन्य अंग्रेजी शिक्षा परस्त लोग इस स्त्रीशिक्षा अभियान को हवा देने लगे और समाज में नारी मुक्ति आन्दोलन की एक प्रतिक्रिया पूर्ण लहर खड़ी हो गयी। परिणामस्वरूप **आज समाज में जो ताण्डव दिख रहा है उसका मूल कारण वैदिक शिक्षा का अभाव और पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण ही कहा जा सकता है**। शिक्षा के अभाव में महिलायें जब पर्दे में थीं तब भी उन्होंने परम्परा से प्राप्त ज्ञान का, मर्यादा का, पवित्रता का, सदाचार का पालन किया था और बच्चों को भी उस आचार-विचार, संस्कृति की सुशिक्षा देती थीं किन्तु अंग्रेजी शिक्षा से जो बेपर्दगी आरम्भ हुई और विकास के नाम पर जो टी.वी. चैनल मीडिया आदि के माध्यम से घर-घर गाँव-गाँव ही नहीं जंगल-पर्वत तक जो ज्ञान परोसा गया उसके लिये तो कोई शब्द ही नहीं है। दुर्गा शक्ति आराधना का पर्व नवरात्र बीत गया, नारी शक्ति के नव रूपों की जमकर आराधना हुई, घर-घर में कन्या पूजन हुआ पर नारियों पर अत्याचार कहीं से भी कम हुआ हो, यह नहीं देखा गया, यह चिन्तन का विषय है।

***

सितम्बर 2013 **महर्षि पाणिनि-प्रभा**
पत्रिका के सम्पादकीय से उद्धृत

ग्रहों की क्रूरता और महिलायें

आज भी जहाँ धर्म के नाम पर कर्मकाण्ड के नाम पर नारियों पर प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं, उनके साथ भेदभावपूर्ण, अपमानजनक व्यवहार किया जाता है, उसमें भी सनातन धर्म और वेद की दुहाई दी जाती है, तो बड़ी हैरानी होती है क्योंकि–

जिन्होंने आज तक वेद नहीं पढ़े, वेद के दर्शन नहीं किये, जिनके यहाँ वेदों की पहचान गाय, घोड़ा, गधा आदि के रूप में होती है वे वेद की बात करते हैं। जो वेद के नाम पर वेदान्त और पुराण की चर्चा करते हैं, जो वेद का नाम लेकर उपनिषद् और गीता के वचन प्रमाण रूप में उद्धृत करते हैं वे वेद की बात करते हैं। जो सायण और उव्वट महीधर तक के वेदभाष्य को नहीं पढ़ते वे सनातन धर्म की व्याख्या करते हैं, जिनके यहाँ 'निर्णय सिन्धु' और 'धर्मसिन्धु' ही शास्त्र माने जाते हैं, वेद क्या है, वेद वचन क्या हैं? उन्हें ज्ञात नहीं, वे वेद और सनातन धर्म की बात करते हैं, वेदों में सामाजिक नियम मानवता के अधिकार की बात करते हैं।

अभी गत 26 जनवरी 2016 को शिरडी से आगे शनि शिंगणापुर, जो शनि महाराज का गाँव कहा जाता है, वहाँ रण रागिणी भूमाता ब्रिगेड की अगुवा तृप्ति देसाई के नेतृत्व में सैकड़ों महिलायें शनि ग्रह के उस चबूतरे की ओर बढ़ीं जहाँ महिलाओं का जाना वर्जित है। यह समाचार आग की तरह सारे देश में फैल गया और काशी के विद्वान् भी ज्योतिष्पीठ एवं द्वारका पीठाधीश्वर शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी की अगुवाई में इस विषय पर अपनी मुहर लगाने से नहीं चूके कि शनि एक क्रूर ग्रह है देवता नहीं, जिससे नारियों को बचना चाहिये, अन्यथा अनर्थ हो जायेगा। वस्तुतः महिलाओं के क्रूर ग्रह तो पुरुष ही हैं जो कदम-कदम पर धर्म और शास्त्र के दाँव-पेंच बताकर उन्हें भयभीत करते रहते हैं।

वे भूल जाते हैं ये वही नारियाँ हैं जिन्होंने विदेहराज जनक, ऋषि याज्ञवल्क्य, भगवान् राम-कृष्ण, भगवान् पाणिनि-पतञ्जलि, कणाद-व्यास, ध्रुव-प्रह्लाद जैसी सन्तानों को जन्म दिया है। और अपनी गोद में बिठाकर इन्हें दैनिक अग्निहोत्र, सन्ध्योपासना वेदाभ्यासपूर्वक सुसंस्कार दिये हैं। वे भूल जाते हैं कि कभी आदि शंकराचार्य और मण्डनमिश्र के शास्त्रार्थ की मध्यस्थता भी एक नारी ने ही की थी।

इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम तो मैं अपने सभी धर्माचार्यों और विद्वानों से यह कहना चाहती हूँ कि वे यह कहना बन्द करें कि शनि देव नहीं अपितु (क्रूर) ग्रह हैं। क्योंकि महर्षि यास्क की–

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युःस्थानो भवतीति वा।[1]

इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो भी द्युस्थानीय है वह देव है। इसलिये द्युलोकस्थ छोड़े-बड़े सभी ग्रह-नक्षत्र निश्चयपूर्वक देव हैं। यही नहीं, जो दीप्तिमान् हैं, दूसरों को प्रकाशित करते हैं तथा संसार के कल्याण के लिये बिना किसी निजी स्वार्थ के सतत गतिमान् हैं वे सब देव हैं।

इनके कथनानुसार यदि शनि ग्रह देव नहीं हैं तो सूर्य, चन्द्र और पृथिवी भी देव नहीं हो सकते क्योंकि ये भी ग्रह हैं। जबकि यजुर्वेद के– **अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता............।**[2] इस मन्त्र में तो स्पष्ट रूप से सूर्य तथा चन्द्रमा को देवता कहा है।

रही बात कौन क्रूर है कौन अक्रूर इसे स्पष्ट करने की! तो दुर्जन-सन्तोष-न्याय से हम मान भी लें कि शनि क्रूर ग्रह है अर्थात् अन्य सूर्य आदि ग्रह अक्रूर हैं और वह भी पुरुषों के लिये तो बिल्कुल ही क्रूर नहीं हैं। यदि हाँ! तो जेठ की भरी दोपहरी में तपते आसमान के नीचे सभी पुरुषों को दो घण्टा खड़ा करके देख लिया जाये कि सूर्य देवता पुरुषों के लिये कितने क्रूर हैं या अक्रूर।

---

1. निरु. 7/15/4
2. यजु. 14/20

तीसरी बात मैं पूछना चाहती हूँ अपने ज्योतिष कर्मकाण्ड के सभी विद्वानों से, क्या नवग्रह पूजा में वे अकेले पुरुष को यजमान के रूप में बिठाते हैं या पत्नी को भी। यदि पत्नी भी साथ बैठती है तो उसके सामने शनि ग्रह का आवाहन पण्डित जी कैसे कर लेते हैं? क्या उस समय शनि अपनी क्रूरता को कहीं छोड़ आते हैं? या पण्डित जी उनको बुलाने का झूठा पाखण्ड रच कर यजमान से पैसा ऐंठने की जुगत में लगे रहते हैं?

मैं पूछना चाहती हूँ– पण्डित जी के द्वारा आहूत नवग्रह यदि सचमुच धरती पर आ जायें तो क्या कोई भी प्राणी इस धरती पर जीवित रह सकता है? नहीं। वस्तुतः हमारे दुष्ट कर्मों के कारण क्रूर तो कोई भी ग्रह हो सकता है, स्वयं धरती माता भी जब गुस्से में डोलती हैं तब उस भूकम्प और सूनामी के आगे क्या कभी किसी की भी चलती है? नहीं। फिर धरती के किसी कोने में किसी के नाम का कोई चबूतरा बना देने या विग्रह बिठा देने से कोई विश्वनाथ, जगन्नाथ, शनि, दुर्गा या काली कुछ भी हो सकता है? नहीं।

सत्य तो यह है कि धर्म के नाम पर आज जो पाखण्ड रचे जा रहे हैं वे कहीं से भी सनातन या वैदिक नहीं अपितु तथाकथित हिन्दू धर्म का बखेड़ा मात्र हैं जिसे कुछ सौ वर्षों का इतिहास कहा जा सकता है। इसलिये यह कहना कि शिंगणापुर के शनि मन्दिर में महिलाओं के दर्शन के बहाने सनातन धर्म को नष्ट करने की साजिश रची जा रही है या फिर एक दबे मुद्दे को बहस का विषय बनाया जा रहा है, गलत है। जब तक दो-दो चार का बराबरी का सामाजिक न्याय सबको नहीं मिलेगा, यह मुद्दा गर्माता ही रहेगा।

अतः बन्द करें काशी के विद्वान् या कोई भी धर्माचार्य शास्त्रों के साथ खिलवाड़ करना, स्वयं को धर्माचार्य समझना, या फिर व्यर्थ की प्राण प्रतिष्ठा और देवताओं के आवाहन और विसर्जन के ढोंग रचना। सत्य तो यह है कि ये सनातन धर्म के ठेकेदार वेद, वेदभाष्य तो बहुत दूर गीता पुराण उपनिषद् शांकरभाष्य भी नहीं पढ़ते फिर भी स्वयं को सनातनी समझते हैं

और दूसरों को सनातन धर्म का हौवा दिखाते हैं। जब कि इनके आदि गुरु शंकराचार्य श्वेताश्वतरोपनिषद् का भाष्य करते हुए शिवधर्मोत्तर पुराण के–

आत्मस्थं यः परित्यज्य बहिःस्थं यजते शिवम्।
हस्तस्थं पिण्डमुत्सृज्य लिह्यात्कूर्परमात्मनः।
सर्वत्रावस्थितं शान्तं न पश्यन्तीह शंकरम्॥[1]

इन श्लोकों को उद्धृत कर स्पष्ट रूप से विग्रह पूजा का निषेध करते हैं। इस सम्बन्ध में कोई इनको उव्वट, महीधर का अर्थ बताये तो ये उसे दयानन्द का भाष्य बताते हैं इनकी दृष्टि में शायद उव्वट, महीधर भी दयानन्दी हो गये हैं। उव्वट महीधर के भाष्य को बिना पढ़े ये यजुर्वेद के **शन्नो देवीरभिष्टये०**[2] **उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि०**[3] इन मन्त्रों का विनियोग शनि और बुध ग्रह के आवाहन में करते हैं जबकि सायण, उव्वट, महीधर आदि भाष्यकारों ने ऐसा नहीं किया पर शायद ये इनके भी बाप हो गये हैं।

शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द जी का यह कथन है कि "भारतीय संस्कृति में स्त्री पुरुष समान नहीं अपितु एक दूसरे के पूरक हैं। शास्त्रों में कभी नारी कभी पुरुष तो कभी दोनों की प्रधानता है" यह सत्य है। ये तो परिस्थितियों के अनुसार घर-परिवार में भी चलता रहता है क्योंकि पाँचों अंगुलियाँ कभी एक बराबर नहीं होतीं, सब जानते हैं। अतः कभी भी किसी को भी एक डण्डे से नहीं हाँका जा सकता, किन्तु यह कथन कि "शनि देव नहीं क्रूर ग्रह है जिसकी दृष्टि घातक होती है, ऐसे में महिलायें वहाँ जाने का साहस न करें अन्यथा यह उनके लिये अमंगलकारी ही होगा तथा महिलाओं के बलात् प्रवेश में सहयोग देने वालों का भी अनिष्ट होगा" बिल्कुल गलत है।

हँसी तो तब आती है जब ये विद्वान् धर्माचार्य स्वयं ही एकमत नहीं

---

1. श्वे.उ. 1/12
2. यजु. 36/12
3. यजु. 15/54

होते। इस सम्बन्ध में काशी के ज्योतिषाचार्यों का अलग ही अभिमत है। उनमें विख्यात ज्योतिषाचार्य पं. ऋषि द्वेवदी तथा प्रो. चन्द्रमौलि उपाध्याय का कथन है कि– "महिलायें शनि का दर्शन कर सकती हैं तेल चढ़ा सकती हैं।" जबकि अलिख भारतीय काशी विद्वत्परिषद् के महासचिव ज्योतिषाचार्य डॉ. कामेश्वर उपाध्याय "स्त्री पुरुष दोनों के लिये विग्रह स्पर्श बन्द होना चाहिये, इसका कहीं विधान नहीं है" यह कहते हैं। तथा अन्य काशी विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष आचार्य रामयत्न शुक्ल, डॉ. शिवजी उपाध्याय, डॉ. वसिष्ठ त्रिपाठी, डॉ. रमाकान्त पाण्डेय, रामकिशोर त्रिपाठी आदि पण्डित स्वामी स्वरूपानन्द जी से सहमति जताते हुए एकमत से "महिलाओं द्वारा देवता के रूप में शनि की पूजा करने की जिद को अनुचित तथा उनके द्वारा समानता के लिये किया गया यह आन्दोलन व्यर्थ है" यह बताते हैं।

जबकि आज के तथाकथित ज्योतिष की मान्यता के अनुसार शनि न्याय और लोकतन्त्र का कारक ग्रह है। ऐसे में यदि इस अवधारणा को सच मान लें तो क्या यह सवाल नहीं उठता कि "आधी आबादी को इंसाफ दिलाने की मुहिम के लिये शनि स्थान से बेहतर और क़ोई स्थान नहीं हो सकता।" श्री शशि शेखर जी का यह वक्तव्य[1] बिल्कुल सत्य है कहा जा सकता है। उनका सम्पूर्ण लेख इस सम्बन्ध में बड़ा ही रोचक है जो कि shashishekhar@lirhindustan.com पर पढ़ा जा सकता है।

यही नहीं वर्षा और शरद् ऋतु में ये ज्योतिषी विवाह की आज्ञा नहीं देते पता है क्यों? क्योंकि इनके विवाहवृन्दावन में लिखा है–

स्त्रीनामानमृतुं विहाय मुनयो माण्डव्यशिष्या जगुः।

अर्थात् माण्डव्य ऋषि के शिष्यों ने स्त्रीनाम वाले ऋतु को छोड़ कर अन्य ऋतुओं में विवाह की आज्ञा दी है। जिसे सम्पूर्ण हिन्दू समाज ने स्वीकार कर लिया। इस पर **हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र** के लेखक **डॉ. हरिहर पाण्डेय** लिखते हैं–

1. हिन्दुस्तान समाचार पत्र में **"धर्म और हमारे वक्त की औरतें"** आजकल के अन्तर्गत प्रकाशित।

"जगद्गुरु आदिशंकराचार्य ने अपनी **मणिरत्नमाला** में लिखा है कि नारी कभी विश्वसनीय नहीं होती। वह नरक का द्वार है, पिशाची है, हेय है, त्याज्य है, विष है, सुरा है और उसका चरित अज्ञेय है।

विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी। द्वारं किमेकं नरकस्य नारी।
नारी पिशाची च सुधोपमं विषम्। किमत्र हेयं कनकं च कान्ता।।
संमोहयत्येव सुरेव का स्त्री। ज्ञातुं न शक्यं चरितं तदीयम्।।

सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने बहुत लिखा है। उनके कुछ पद ये हैं–

अधम ते अधम अधम अति नारी। नारि निबिड़ रजनी अंधियारी।
विधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी।।
अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
सहज अपावन नारि पति सेवत सुभ गति लहइ ।।

किन्तु हमें अन्धविश्वासी न बनकर शान्त चित्त से सोचना है कि ऋतु, मास, पक्ष, जल, वायु, अग्नि आदि निराकार और निर्जीव पदार्थों में क्या कोई लिंग होता है? (1) संस्कृत व्याकरण के अनुसार पुरुषों के लिंग, वीर्य, मन, तेज शरीर, इन्द्रिय और बाल आदि अनेक अंग नपुंसक लिंगी हैं, ग्रीवा, नाडी, नासिका, बसा आदि स्त्रीलिंगी हैं, नारियों के भग, योनि, कुच, कच, हस्त, कटाक्ष आदि पुल्लिंगी हैं, दार शब्द भी पुल्लिंगी है तो क्या इन सब को वैसा ही मान लिया जाय? (2) रात्रि वाचक सब शब्द, तिथि, घटी और अनेक नक्षत्र स्त्रीलिंगी हैं, तो क्या रात्रि में, किसी तिथि में और किसी घटी में तथा रोहिणी, मघा, उत्तरा फाल्गुनी, स्वाती, अनुराधा आदि स्त्री नक्षत्रों में विवाह न किया जाय? (3) चन्द्र की चन्द्रिका, ग्रहों की किरणें, और तारों की छवियाँ स्त्री हैं। (4) पृथ्वी, विद्या, लक्ष्मी, भक्ति, मित्रता, दया, शान्ति, क्षमा, योग सिद्धियाँ, नदियाँ और दिशाएँ स्त्रियाँ हैं। तो क्या हम इन सब से नाता तोड़ दें? (5) ज्योतिष-शास्त्र उत्तरायण में

विवाह को शुभ मानता है पर यह शब्द नपुंसक लिंगी है। स्त्री ऋतुएँ निषिद्ध हैं तो नपुंसक उत्तरायण शुभ कैसे हो गया? (6) **वर्षा शरद् ऋतुएँ स्त्री हैं पर उनके चारों मास पुरुष हैं, आठों पक्ष पुरुष हैं और सारे दिवस पुरुष हैं तो ऋतुओं को ही प्रधान क्यों माना जाय? ऋतुएँ जिस संवत्सर की अंगभूत हैं वह तो पुरुष ही है?** (7) वर्षा और शरद् को ऋतु कहा है पर ऋतु शब्द पुल्लिंगी है तो ऋतु को क्या मानें? (8) **सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि पुरुष इन घृणित स्त्रियों से विवाह क्यों करते हैं और सूरदास, तुलसीदास तथा कालिदास सदृश भक्त कवि इन नारियों की शरीर-शोभा का विशद वर्णन क्यों करते हैं?** सत्य यह है कि पुरुष दस मास तक नारी के गर्भ में ही पलता है और बाद में उसी के दूध से पुष्ट होता है इसलिए वह नारी से महान् नहीं है।

निराकार पदार्थों में लिंग नहीं होता और एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न भाषाओं में विभिन्न लिंग होते हैं। आत्मा शब्द संस्कृत में पुल्लिंगी और हिन्दी में स्त्रीलिंगी है। इतना ही नहीं, संस्कृत में भी लिंग बदलते रहते हैं। इसीलिए आदेश दिया गया है– **लिंगमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिंगस्य।** अर्थात् लोकाश्रित होने से लिंग अनिश्चित है। वेद में इषु शब्द स्त्रीलिंगी है, प्रोष्ठपद पुंल्लिगी है, धर्म नपुंसक लिंगी (धर्माणि) है पर संस्कृत में वे पुरुष, स्त्री और पुंल्लिंगी हो गये हैं। **जल, तारा, वेद आदि अनेक पदार्थों के पर्यायवाची शब्द विभिन्न लिंगों के हैं अतः स्त्री होने के कारण वर्षा शरद् के त्याग का विधान अज्ञान जन्य है। उसे मानने पर तो हमें सरस्वती, लक्ष्मी, श्रद्धा, मैत्री शान्ति, क्रिया और लज्जा आदि स्त्रीलिंगी नारियों को भी छोड़ना होगा।''**

कथन बिल्कुल यथार्थ है। इस प्रकार यदि हम अपनी अहेतुक मान्यताओं में बदलाव नहीं करते तो आज साईं भगवान् निर्मल बाबा जैसे अनेक भगवानों को जन्म लेने से कोई रोक नहीं सकता। आज का सनातन धर्म (नहीं हिन्दू धर्म) चूँ-चूँ का मुरब्बा है यह मालवीय जी ने ठीक ही कहा था।

याद रखें। आग का धर्म यदि जलाना है तो वह चाहे स्त्री हो या पुरुष सबको जलाएगी, साँप, बिच्छू को निर्विष किये बिना जो भी उनसे खिलवाड़ करेगा चाहे वह स्त्री हो या पुरुष उनके जहर से मुक्त नहीं हो सकता। समुद्र में यदि कोई अनजान व्यक्ति छलांग लगायेगा तो वह डूबेगा ही। पर्वत पर चढ़ना यदि स्त्री के लिये कठिन है तो पुरुषों के लिये भी बहुत आसान नहीं है। इसलिये **सृष्टि के नियम को, परमेश्वर की समान न्याय व्यवस्था को कोई स्त्री पुरुष के नाम पर चुनौती नहीं दे सकता।**

सबसे पहले तो जिसकी जहाँ व्यवस्था है अर्थात् जो द्युस्थानीय है वह पृथिवी स्थानीय नहीं हो सकता जो पृथिवीस्थानी है वह द्युस्थानी नहीं हो सकता यह प्रकृति का ब्रह्माण्ड का अटल नियम है। आपके या हमारे मानने से कोई ग्रह अपना स्थान छोड़ कर इधर-उधर यानी धरती पर आ जाये यह कभी भी सम्भव नहीं है इसलिये शनि देव का यहाँ क्रूर प्रभाव है वह भी वर्ग विशेष के लिये, महिलाओं के लिये यह कथन तो बिल्कुल ही निराधार और द्वेषपूर्ण है।

***

शारदीय नवरात्र और दुर्गा

अभी इसी वर्ष सहारा चैनल का प्रस्ताव आया कि इस बार शारदीय नवरात्र में हम आपसे नवरात्र पर नौ दिन चर्चा करना चाहते हैं। अभी तक शारदीय नवरात्र में दुर्गा के नौ रूपों पर मैंने कभी विशेष विचार नहीं किया था। चिन्तन करने लगी कि आखिर ये वासन्तिक और शारदीय दो नवरात्र वर्ष में मनाते क्यों हैं। वासन्तिक नवरात्र पर इससे पूर्व मैं लिख चुकी हूँ। बात शारदीय नवरात्र की थी। विचार आया- वेद में जहाँ भी आयु की चर्चा आती है वहाँ सौ शरद् ऋतु का ही नाम आता है। जैसे कि–

पश्येम शरदः शतम्।। जीवेम शरदः शतम्।।[1]

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा0[2] **शतं जीव शरदो वर्धमानः0**[3] आदि।

सर्वत्र सौ शरद् ऋतुओं तक हम जीवन यात्रा को पूर्ण करें, कहा गया है। इसी प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मण में एकत्र पक्षी के आकार में संवत्सर का वर्णन आया है। वहाँ वसन्त ऋतु को संवत्सर रूपी पक्षी का सिर, शरद् ऋतु को उसका पुच्छ (पूंछ), ग्रीष्म को दक्षिण पक्ष (दाहिना पंख) और वर्षा को उत्तर पक्ष (बायां पंख) बताया गया है।

संवत्सरो वा अग्निर्नाचिकेतः। तस्य वसन्तः शिरः ग्रीष्मो दक्षिणः पक्षः। वर्षा उत्तरः। शरत्पुच्छम्।[4] कहा है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि वसन्त ऋतु यदि संवत्सर का मुख है, आदि है, तो शरद् ऋतु उसका पृष्ठ भाग (अन्त) है। इसीलिए संवत्सर की पूर्णता में शरद् का महत्व है। यही नहीं शरद् ऋतु संवत्सर की पूर्णता का प्रतीक है इसीलिए मन्त्रों में सौ शरद् ऋतु को मनुष्य के जीवन की एक सामान्य परिधि

---

1. अथर्व. 19/67/1-2
2. ऋ. 10/61/4, अथर्व. 2/79/8
3. ऋ. 10/161/4
4. तै. ब्रा. 3/11/2-3

बताया गया है।[1] ब्राह्मण ग्रन्थों में ही शरद् को बर्हिः अर्थात् बढ़ाने वाला भी कहा है।

शरदि हि बर्हिष्ठा ओषधयः भवन्ति।[2]
शरदि ह खलु वै भूयिष्ठा ओषधयः पच्यन्ते।[3]

अर्थात् शरद् ऋतु में जीवनदायिनी प्रभूत ओषधियाँ होती हैं जो कि वर्षा ऋतु की देन हैं। वे शरद् ऋतु में पक कर तैयार हो जाती हैं जिनका उपयोग शारीरिक बल, बुद्धि, वीर्य, आयु को बढ़ाने के लिए किया जाता है इसलिए शरद् ऋतु को बर्हिस् कहा जाता है। एक शरद् (वर्ष) पूर्ण करके दूसरे शरद् के लिये आगे बढ़ाना, यह अर्थ भी हो सकता है।

वसन्त और शरद् ऋतु को हम ऋतुसन्धि भी कह सकते हैं। ऋतुसन्धियों में व्याधि (रोग) उत्पन्न होते हैं, विशेष रूप से कफ का प्रकोप बढ़ जाता है। वात-पित्त भी विषम हो जाते हैं इसलिए इन ऋतुओं के आरम्भ में विशेष रूप से सामूहिक यज्ञ का विधान शास्त्रों में बताया गया है, जिन्हें **भैषज्य यज्ञ** कहा है–

भैषज्ययज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि। तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते। ऋतुसन्धिषु हि व्याधिर्जायते।।[4]

नवरात्र सृष्टि की उत्पत्ति अथवा संहार का प्रतीक भी माना जा सकता है जिसमें **सांख्य के अनुसार** गणात्मक 25 तत्वों का नौ रूप इस प्रकार होगा– (1) प्रकृति (2) महान् (बुद्धि) (3) अहंकार (4) पंचतन्मात्रा (5) ज्ञानेन्द्रिय (6) कर्मेन्दिय (7) मन (8) पंचमहाभूत (9) पुरुष तथा **तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार** उस अविनाशी ब्रह्म से– (1) आकाश, उससे (2) वायु, उससे (3) अग्नि, उससे (4) जल, उससे (5) पृथिवी, (6) ओषधियाँ (7) अन्न (8) रेतस् (9) पुरुष शरीर।

---

1. यजु. 35/15
2. को. 3/4
3. जै.उ. 1/35/5
4. गो.ब्रा. 3/1/19, कौ.ब्रा. 5/1

इन्हें हम नवरात्र को नौ दिनों में विभक्त कर सकते हैं जैसे **नवरात्र का प्रथम दिन** प्रकृति अथवा आकाश का है, **द्वितीय दिन** महान् (बुद्धि) तथा वायु का, **तृतीय दिन** अहंकार अथवा अग्नि का, **चतुर्थ दिन** पंचतन्मात्रा अथवा जल, **पंचम दिन** ज्ञानेन्द्रिय अथवा पृथिवी, **षष्ठ दिन** कर्मेन्द्रिय अथवा ओषधि, **सप्तम दिन** मन अथवा अन्न, **अष्टम् दिन** पंचमहाभूत अथवा रेतस्, **नवम दिन** पुरुष अथवा पुरुष शरीर। इनकी क्रमशः वासन्तिक नवरात्र में उत्पत्ति तथा शारदीय नवरात्र में संहार इन नौ दिनों में हुआ अथवा होता है, यह प्रतीकात्मक दृष्टिकोण है, ऐसा कहा जा सकता है। मानवीय सृष्टि के लिए नौ मास का समय अपेक्षित होता है। नौ मास का प्रतीक यह नौ दिन है **नवमे नवः** नौ दिन में जप-तप-व्रतादि के द्वारा मानव शरीर का शोधन, कायाकल्प हो जाता है। निर्माण की यह प्रक्रिया अंधेरे में, गर्भ में होती है। दिवस की पूर्णता भी रात्रि में होती है इसलिए इन दिनों के लिए नवरात्र शब्द का प्रयोग हुआ नवाह नौ दिन का नहीं कहा जा सकता है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन दिनों शक्ति की उपासना माता के रूप में की जाती है। पुरुष भी मातृशक्ति की उपासना करता है। वस्तुतः सृष्टि की उत्पत्ति के लिये पुरुष का प्रकृति के साथ साहचर्य होना आवश्यक है। बिना दोनों के एक हुए सृष्टि असंभव है। शारदीय नवरात्र वर्ष का (उप)संहार अथवा सृष्टि का संहार (प्रलय) काल है इसलिये प्रलयंकरी, महिषासुरमर्दिनी दुर्गा के रूप में उस शक्ति का पूजन होता है, कहा जा सकता है। इन दिनों में पुरुष भी मातृशक्ति की उपासना करता है, दुर्गा सप्तशती का पाठ करता है। भले ही घर में वह मातृशक्ति को अबला समझ कर पीटता, झपटता, उसका निरादर करता हो। पर सत्य यही है स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर पूर्ण होते हैं। पुरुष अपूर्ण है यदि उसके अन्दर दया, क्षमा, करुणा, श्रद्धा, लज्जा, धृति (धैर्य) आदि गुण नहीं हैं। स्त्री भी अपूर्ण है यदि उसके अन्दर सत्य, शौर्य, तेज, पराक्रम नहीं है। फिर भी नारी का स्थान सर्वोच्च है क्योंकि यदि पुरुष सच्चरित्र, कर्तव्यनिष्ठ, धर्मपारायण, समाज का सेवक, देशभक्त, धैर्यगुण सम्पन्न है तो वह नारी की देन है। जितने भी महापुरुष हैं जिनमें ये

गुण हैं वे माता की देन हैं। उसका नाम ही माता निर्माता है। आज भी जिन परिवारों में नारी का सम्मान है उस परिवार के बच्चे धर्मपारायण सच्चरित्र कर्तव्यनिष्ठ, सुशील विनम्र सौम्य होते हैं। नारी वह मूर्ति है जो क्षमा सहनशीलता दया, करुणा की अवतार है। उसके इन गुणों को उसकी कमजोरी समझ कर पुरुष समाज ने अपनी भयंकर आसुरी नमुचि (अहंकार) वृत्ति का परिचय देते हुए नारी के प्रति जो अपमानजनक व्यवहार, अत्याचार किये हैं मध्यकाल में, आज भी नारी उससे उबर नहीं पाई है। आज भी कहीं छुप कर घर की चहारदीवारी के अन्दर तो कहीं सार्वजनिक रूप से जो अपमान-अत्याचार नारी के साथ होते है, जिन्हें वह सहन करती आई है उनकी कोई सीमा नहीं है। मेरी दृष्टि में आज की नारी पथभ्रष्ट है, उसे बागी बना दिया है समाज की करतूतों ने, हमें इस स्थिति को सम्हालना होगा। शायद वर्ष में दो बार आने वाले ये नवरात्र ही हमें इस सम्बन्ध में बार-बार झंकझोरने का प्रयास करें और एक सामान्य नारी को उसके नारी होने का गौरव दिला सकें।

वेद में **पृथिवी को दुर्गा** कहा गया है और नारी को पृथिवी के समान सहनशील बताया गया है साथ ही जैसे यह पृथिवी हम प्राणियों के दुःखों को दूर कर देती है उसी प्रकार नारी का साहचर्य मनुष्य समाज की बहुत सारी पीड़ाओं, बाधाओं, कष्टों का सहज ही निवारण करने वाला होता है, यह सत्य है। अथर्ववेद का 12वाँ काण्ड जो कि भूमि स्तवन के लिए प्रसिद्ध है, उसमें यह धरती किस प्रकार मनुष्यों के सत्कर्मों से सुरक्षित व सेवन योग्य होती है इसके उपाय और अपाय भी बताये गये हैं। वहाँ वशा गौ के रूप में, ऐसी गौ (वेद) वाणी जो मनुष्य समाज को आत्मसंयमी जितेन्द्रिय स्वराट् बना दे राजा उसका अधिक से अधिक प्रचार करे और इस प्रचार-प्रसार का दायित्व वेदज्ञ विद्वान् को सौंपें, यह कहा गया है अन्यथा–

य एवं विदुषेऽदत्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम्।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सह देवता।।[1]

1. अथर्व. 12/4/23

अर्थात् जो राजा विद्वान् ब्राह्मण को यह वशा गौ (वेदवाणी) न देकर किसी अन्य अविद्वान् को यह अधिकार देता है तो उस राजा के लिए अग्नि-वायु-जल आदि देवताओं के साथ मातृरूपा पृथिवी दुर्गा बन जाती है। दुर्गा का अर्थ है **दुः दुखं गच्छति गमयति या सा दुर्गा**। वस्तुतः इसके दो अर्थ हो सकते हैं क्योंकि यही दुर्गा जहाँ दुख को दूर करने वाली है वहीं वह दुष्टों को दण्ड देकर उन्हें दुःख देने वाली भी है। जिस प्रकार यह पृथिवी ही नहीं सम्पूर्ण प्रकृति अन्याय अधर्म के विरोध में दुर्गा बन जाती है उसी प्रकार नारी भी शक्ति स्वरूपा है, उसको कम आंकना अज्ञानता है। इसी बात को दिखाने के लिए परमेश्वर की यह प्रलंयकारिणी शक्ति नवरात्र में दुर्गा बनकर समाज को नई दिशा देती है। इतिहास साक्षी है, समय-समय पर नारी ने भी अपना यह रूप दिखाया है। रानी दुर्गावती, पद्मावती, किरणमयी, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई आदि इतिहास प्रसिद्ध अनेक वीराङ्गनाएँ क्षत्राणियाँ इसी दुर्गा के रूप हैं और थीं, इसमें सन्देह नहीं।

इस सच को स्वीकार करते हुए समाज ने दुर्गा के रूप में जो नारी का सम्मान किया है वह समुचित है, पर खेद है कि वह उसे पत्थर के रूप में ही पूजना ठीक समझता है। हकीकत में हर प्रकार से आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक, बौद्धिक रूप से सक्षम नारी भी आज घरों में पुरुष के अहं का, शोषण का, आसुरी वृत्ति का शिकार होती ही है।

अथर्ववेद के इसी काण्ड में ब्रह्मगवी के रूप में अर्थात् वेद की आज्ञा के रूप में दुर्गा (पृथिवी) के नौ रूप (नौ विशेषतायें) जिनसे आच्छादित यह धरती, माता के समान सबके लिए सुखदायिनी है, इसका वर्णन मननीय है–

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता॥
सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता॥
स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता।
यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम्॥[1]

1. अथर्व. 12/5/1-3

(1) श्रम और तप से उसकी सृष्टि हुई है। (2) ब्रह्म के द्वारा (वित्ता) अस्तित्व को प्राप्त ऋत में वह श्रित है। (3) सत्य से आवृत है। यह ब्रह्माण्ड सत्य है क्योंकि उसका रचयिता ब्रह्म सत्य है। (4) श्री संपत्ति से प्राकृतिक संपदा से प्रावृत है (5) यश से परीवृत है। यहाँ के ऋषियों, तपस्वियों, देवों, ब्रह्मचारियों, नारियों ने भी इसको यशस्वी बनाया है। (6) स्वधा = अन्नौषधि फल-फूल, वनस्पति से परिहित है। (7) श्रद्धा से पर्यूढ विवेचनीय है। (8) दीक्षा से गुप्त (रक्षित) है (9) यज्ञ में प्रतिष्ठित है, इसी में लोक समाज **निधनम्** =निहित है अथवा इसी में लोक समाज का निधन अन्त है।

तात्पर्य हुआ, यह पृथिवी हमारे शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, आधिभौतिक आदि सभी दुःखों को दूर करने वाली है। वह श्रम और तप से तथा ब्रह्म की उपासना से प्राप्त करने योग्य है। उसे प्राप्त करने के लिए जीवन में सत्य को अपनाना होगा, तभी हम श्री यश के धनी बन सकते हैं। वह सदैव श्रद्धापूर्वक की गई दीक्षा से रक्षणीय है और सबसे बड़ी बात, वह यज्ञ में प्रतिष्ठित है क्योंकि यज्ञ ही इस भुवन की नाभि है (**अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः**[1])। वस्तुतः दुर्गा की आराधना धरती माता की उस शक्ति की आराधना है जिसको प्राप्त कर हम जीवन में उन्नत और समृद्ध होते हैं।

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥[2]

जो यज्ञ नहीं करता उसे परलोक तो क्या इहलोक भी नहीं प्राप्त होता। वह सर्वगत ब्रह्म तो सदा यज्ञ में ही प्रतिष्ठित है। यह धरती हमारे लिए दुःख दूर करने वाली न होकर दुःखदायिनी बन जायेगी, पर्यावरण खतरे में पड़ जायेगा यदि हम धरती पुत्र यज्ञ नहीं करते हैं, क्योंकि वह यज्ञ में प्रतिष्ठित है। वेद में पुरुष को द्यौ कहा तो नारी को पृथिवी (**द्यौरहं पृथिवी त्वं**)। इसलिए नारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पृथिवी के गुणों को धारण

---

1. यजु. 23/62
2. गीता. 3/15

करे और सही अर्थों में घर-घर दुर्गा की अवतार बन कर सबके दुःखों को दूर करे। वेद में नारी को अघ्न्या भी इसी अर्थ में कहा है।[1] अघ्न्या के दो अर्थ हैं– (1) **अहन्तव्या** न मारने योग्य तथा (2) **आहन्तव्या** दुष्ट समाज का आहनन वध करने योग्य। वहाँ नारी के 10 नाम गिनाये हैं (1) इडा, (2) रन्ति, (3) हव्या, (4) काम्या, (5) चन्द्रा, (6) ज्योति, (7) अदिति, (8) सरस्वती, (9) मही, (10) विश्रुति जिनकी पहले भी चर्चा इस पुस्तक में मैं कर चुकी हूँ। वस्तुतः नारी का **अघ्न्या** तथा **विश्ववारा** आदि नाम तभी सार्थक है जब वह समाज की, राष्ट्र की पथ-प्रदर्शिका दुर्गा बने। दुर्गा सप्तशती के अनुसार दुर्गा के शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी आदि नौ रूप तथा नाम[2] आज समाज में कल्पित होकर प्रचलित हैं। दुर्गा सप्तशती में सर्वप्रथम स्त्री शक्ति की उपासना वाग्देवी सरस्वती के रूप में की गई है–

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान, मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय, वार्त्ता च सर्वजगतां परमार्त्तिहन्त्री।।
मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा, दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसंगा।।[3]

अर्थात् आप ही ऋग्वेदादि त्रयी विद्या की आधार और भगवती (छहों ऐश्वर्यों से युक्त) आप ही हैं जिससे समस्त शास्त्रों के सार का ज्ञान होता है वह मेधाशक्ति इस दुर्गम भवसागर से पार उतारने वाली नौका रूप दुर्गा देवी आप ही हैं, कहा है।

वहाँ कहा है– यही आद्या सबकी आदि कारण त्रिगुणमयी (सत्वरजस्तमोरूपा) परमेश्वरी **महालक्ष्मी** हैं यही **महाकाली** (तमोरूपा तामसी देवी) महामाया, महामारी, एकवीरा, कालरात्रि, दुरत्यया। यही सत्वगुणरूपा **महासरस्वती** महाविद्या, भारती, वाक्, कामधेनु, आर्या, ब्राह्मी, वेदगर्भा, धीश्वरी (बुद्धि

---

1. यजु. 8/43
2. शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, सिद्धिदात्री।
3. दुर्गा सप्त. 4/10-11

की स्वामिनी) आदि नामों से जानी जाती हैं। वहाँ कहा है, मैं ही पृथिवी लोक में 8 वसु, अन्तरिक्ष में 11 रुद्र तथा द्युलोक में 12 आदित्यों के साथ गतिशील हूँ। ऋग्वेद के वाक् सूक्त, जिसकी ऋषिका वागाम्भृणी महिला है उसके मन्त्रों को भी इसमें उद्धृत किया गया है जो दुर्गा सप्तशती का मूल आधार कहा जा सकता है।

वहाँ वाग्देवी के रूप में परमात्मा का ही स्तवन हुआ है क्योंकि वस्तुतः वह परमेश्वर अलिंग है। वह न पुरुष है न स्त्री[1]। वही विष्णु है, वही लक्ष्मी है, वही दुर्गा है, वही शंकर है, वही ब्रह्मा है, वही सरस्वती है। इन नामों से जहाँ भी देवी देवता का स्तवन है वह परमेश्वर के विराट् रूप का ही वर्णन है, उसी की शक्तियों का विवेचन है। फिर भी वेद ज्ञान हमारे लिये, हम स्त्री-पुरुषों के लिये है इसलिये अग्नि, इन्द्र आदि देवता के समान पुरुष तथा उषा, रात्रि वाग्देवी सरस्वती आदि के समान नारियाँ अपने जीवन को व्यवहार को बनायें, यह शिक्षा भी है। इसलिये इनके मूल रूप का ही हमें पाठ करना चाहिये। फिर देवी के जो भी दुर्गा शक्ति, लज्जा, शान्ति, वाक्, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, दया, संतुष्टि, स्मृति आदि रूप दुर्गा सप्तशती में बताये हैं वे उचित ही हैं। पर वेद को छोड़कर वेद विहित यज्ञ को छोड़कर दुर्गा सप्तशती विष्णु सहस्रनाम आदि का पाठ करना मूल से दूर होना है, जो कि गंगोत्री से निकली नदियों के समान है, जो आगे-आगे जाकर मैली होती जाती और कहीं-कहीं तो हम मनुष्यों के सम्पर्क से पूर्ण रूप से अपेय विषसम्पृक्त अन्नवत् सर्वथा त्याज्य हो जाती हैं।

बात दुर्गा सप्तशती की करूँ तो यहाँ भी यही हाल है। जनता को बरगलाया जा रहा है देवी पूजा के नाम पर, माता के नाम पर। अभी पहली बार मैंने दुर्गा सप्तशती पुस्तक मंगवाकर उस पर गौर किया जो गीता प्रेस गोरखपुर से छपी है। हिन्दू धर्म के नाम पर ऐसी छोटी-बड़ी पुस्तकें जो वेद और वैदिक मान्यताओं से कोसों दूर हैं, लोगों को सत्य सनातन वेद से न

---

1. अथर्व. 10/8/27

जोड़ कर भ्रमित करने वाली हैं वहाँ से खूब छपती हैं। और अब तो सनातन धर्म में एक नया फैशन चल पड़ा है कि महिलायें भी पुरोहिती करती हैं, महिलायें भी कर्मकाण्ड करा रही हैं, महिलायें भी ब्राह्मण बन रही हैं पर क्या वो यज्ञ, मन्त्र, 16 संस्कार जानती हैं? नहीं, उन्हें तो दुर्गा सप्तशती आदि का पाठ सिखाया जा रहा है। वे दुर्गा पूजा, चण्डी पाठ आदि करा लेती हैं, पूजा के कुछ श्लोक उन्हें याद हो गये हैं इसलिये वे ब्राह्मण और महिला पुरोहित मानी जा रही हैं। जबकि वेद मन्त्र और वैदिक यज्ञ से इनका दूर का भी नाता नहीं है। इन सबका विधान और इन पुस्तकों की रचना ब्राह्मणों ने की ही इसीलिये कि जन-समाज को जो इनकी दृष्टि में स्त्री और शूद्र हैं उन्हें वेदों से दूर रखा जा सके।

दुर्गा सप्तशती में ही देख लें– एक वेदोक्त रात्रि सूक्त है 8 मन्त्रों का[1] दूसरा तन्त्रोक्त रात्रि सूक्त है 15 श्लोकों का। इसी प्रकार एक ऋग्वेदोक्त देवी सूक्त 8 मन्त्रों का है वहीं दूसरा तन्त्रोक्त देवी सूक्त 30 मन्त्रों का है। आज तो लोगों को मन्त्र और श्लोक का ही फर्क नहीं पता, ऐसा घालमेल किया है इन पण्डितों ने। और अब दूसरों के साथ घालमेल करते-करते वे स्वयं ही कुछ नहीं जानते कि मन्त्र क्या है और तन्त्र क्या है। जहाँ देखो बस पूजा के नाम पर **सर्वमंगल मांगल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके। ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी** आदि श्लोकों का पाठ शुरू कर देते हैं। अब क्या आवश्यकता है वेदोक्त मन्त्रों के साथ मनुष्यकृत तन्त्रोक्त देवी सूक्त और रात्रिसूक्त के पाठ की? क्या मूल रूप में देवी रूप परमेश्वर की आराधना के लिये 16 मन्त्र पर्याप्त नहीं है कि आपने तन्त्रोक्त 45 श्लोकों का वहाँ विनियोग कर लिया और साथ में स्वयं के बनाये श्लोकों के ऊपर **ईश्वर उवाच, मार्कण्डेय उवाच, ब्रह्मोवाच, शिव उवाच** आदि लिख-लिख कर मार्कण्डेय, ब्रह्मा आदि ऋषियों को भी बदनाम कर रहे हैं?

वैदिक होकर भी तान्त्रिकों के वाक्यों को मन्त्र कह कर अपना लेना कहाँ

तक उचित है? असल में ये पण्डित सोचते हैं कि जितना कर्मकाण्ड का बखेड़ा और ह्री क्रीं क्लीं फट् आदि के उच्चारण से यजमान को प्रभावित कर दक्षिणा ऐंठ ली जाये उतना अच्छा है।

महर्षि देव दयानन्द ने इसी कर्मकाण्ड के बखेड़े को समाप्त करने के लिये **संस्कार विधि, पञ्चमहायज्ञ विधि** पुस्तकों का प्रणयन किया और बताया कि इन पाँच महायज्ञों व 16 संस्कारों का विधान ही पूर्णतः वैदिक और सत्य सनातन है। दुर्गा की पूजा करनी है तो घर की नारियों को अबला समझ कर पीटना बन्द करो! उनका शारीरिक-आर्थिक-मानसिक शोषण बन्द करो! उनके आत्म-सम्मान की रक्षा करो! और ऋग्वेद के– **अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि0 अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्0** आदि मन्त्रों का पाठ करो! और उस अन्तर्यामी शक्ति का आवाहन करो! बन्द करो करोड़ों रुपये खर्च करना, इन मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा, पूजा व विसर्जन करने में। तभी दुर्गा तथा गौरी ही नहीं गणेश, विश्वकर्मा आदि स्वरूप परमेश्वर की अनन्त शक्तियों विभूतियों को आत्मसात् कर राष्ट्र के सच्चे प्रहरी, नागरिक बन सकोगे।

***

पुस्तक में उद्धृत प्रमाणों की सूची

***

लेखिका का परिचय

नाम	:	नन्दिता शास्त्री 'चतुर्वेदी'
जन्मस्थान	:	31 मई सन् 1961, गोरखपुर (उ.प्र.)
माता-पिता	:	श्रीमती कुन्ती देवी आर्या, श्री कैलाशचन्द्र श्रीवास्तव
आचार्याद्वय	:	वेद विदुषीमणि डॉ. प्रज्ञा देवी, पण्डिता मेधा देवी (संस्थापिका व आचार्या- पाणिनि कन्या महाविद्यालय)
शैक्षिक योग्यता	:	व्याकरणसूर्या, वेदरत्न, व्याकरणाचार्य, एम.ए (संस्कृत) संगीत प्रभाकर (गायन)
कार्यक्षेत्र	:	पाणिनि कन्या महाविद्यालय में प्रधानाचार्या। सम्पूर्ण आर्य जगत् में ब्रह्मा के रूप में वैदिक यज्ञ, वेद पारायण, संस्कार, वेद प्रवचन, वेदगोष्ठी आदि में सतत सहभागिता।
प्रकाशित ग्रन्थ	:	(1) वैदिक निनाद, (2) सत्य का आलोक, (3) श्रुतिधारा, (4) विश्ववारा नारी,
प्रकाश्यमान ग्रन्थ	:	निरुक्तान्तर्गत स्त्रीदेवतानां समीक्षात्मकमध्ययनम्।
प्रकाशित नाटिकायें	:	(1) मैं बहुत खुश हूँ, (2) इक स्वर्ग का नजारा, (3) कन्याओं का उपनयन, (4) श्रमेण तदा किम्, (5) को राष्ट्रम् उद्धरिष्यति।
पुरस्कार	:	शन्नो देवी राष्ट्रीय वेद विदुषी पुरस्कार भुवनेश्वर (उड़ीसा) 2006, महारानी लम्बीबाई वीरता पुरस्कार (सन् 2016)
सम्मान	:	(1) आर्ष विद्या-भास्कर सम्मान अन्तरराष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन मथुरा 2009, (2) धरती पुत्री सम्मान ईशान इंस्टीट्यूट नोएडा 2008, (3) संजीवनी सम्मान जय श्रीकृष्ण संस्था वाराणसी 2013, (4) राष्ट्र गौरव रत्न अलंकरण सम्मान, वाराणसी की आवाज समाचार पत्र 2015, (5) काशी विद्या सम्मान, श्रीकाशी विश्वनाथ

गणपति महोत्सव 2014, (6) काशी रत्न सम्मान, काशी विश्वनाथ कपिल पारमार्थिक ट्रस्ट वाराणसी 2013, (7) मलाला सम्मान, कन्या शिक्षा और सुरक्षा उत्तर प्रदेश सरकार (सन् 2014), (8) वेदश्री सम्मान, अखिल भारतीय विद्वत्परिषद् (2015) (9) वैदिक विदुषी सम्मान, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति नई दिल्ली 2016 (10) प्रज्ञारत्न सम्मान अन्तर्राष्ट्रिय प्रज्ञा मिशन, जबलपुर (सन् 2015)

आकाशवाणी कलाकार : सुगम (संस्कृत) संगीत कलाकार (1990 से 2000 तक), पाणिनि नन्दनम् सी.डी. (संस्कृत तथा हिन्दी) प्रज्ञा प्रसून-मेधा प्रसून (हिन्दी तथा भोजपुरी गीत) सी.डी. कैसेट जो कि आपके संगीत निर्देशन में पाणिनि कन्याओं द्वारा गाया गया। वेद तरंग (वीडियो सी.डी.) आ.स. चेन्नई के सात दिवसीय प्रवचन दो भागों में। यजुर्वेद, सामवेद की डीवीडी, प्रवचन सहित (ईशान इंस्टीट्यूट नोएडा द्वारा)। सन् 1985 से आज भी आकाशवाणी के विभिन्न स्तम्भो में हिन्दी-संस्कृत वार्त्तायें प्रसारित।

आपकी शिष्यायें : आचार्या डॉ. धारणा याज्ञिकी (गुरुकुल शिवगंज) डा. ऋतम्भरा (गुरुकुल नजीबाबाद) डा. प्रीति विमर्शिनी (पाणिनि कन्या महाविद्यालय) आचार्या सविता वेदरत्न (पाणिनि प्रभात कन्या गुरुकुल हैदराबाद) श्रीमती मैत्रेयी वेदरत्न हैदराबाद, डा. ज्योत्स्ना द्विवेदी रीवाँ (मध्यप्रदेश), श्रीमती जाह्नवी भार्गव बैंगलोर, विनीता वेदरत्न चण्डीगढ़ आदि अनेक शिष्यायें हैं जो समाज में कार्यरत हैं।

सम्पादिका : महर्षि पाणिनि-प्रभा

***




सिंह जी, गृहमंत्री,

सुबह-ए-बनारस

विश्ववारा नारी उस क्रांतिदर्शी पुस्तक का नाम है जो सामाजिक संरचना में पुरुष की प्रधानता को ध्वस्त कर मानव जीवन के सभी पक्षों के सभी महत्वपूर्ण पदों पर स्त्री को प्रधानता प्रदान करने के लिए पुख्ता आधार और अकाट्य युक्तियां प्रस्तुत करती है। मध्यकाल से आज तक नारी के साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार के लिए संतों-महंतों, शंकराचार्यों, शिक्षाविदों और कर्मकाण्डी पंडितों को कटघरे में घेरने वाली यह पुस्तक वैदिक वाङ्मय के अनछुए उद्धरणों को सामने रखकर सिद्ध करती है कि निसर्गतः नारी ही सृष्टि की माता है, इसलिए वही मानव समाज की निर्माता है। स्त्री को न केवल पुरुष के समान, वरन् पुरुष से अधिक अधिकार दिये जाने पर बल देती यह पुस्तक सामाजिक क्रांति का वैदिक आधार प्रस्तुत करती है।

राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रिय महत्त्व के वैदिक सम्मेलनों-संगोष्ठियों में प्रस्तुत किये गये सत्रह गहन-गवेषणापूर्ण निबंधों को संगृहीत करने वाली यह पुस्तक वेदाध्येताओं, छात्र-छात्राओं, अध्यापकों और अनुसंधानकर्ताओं के लिए अत्यंत उपादेय है।



पुस्तक की लेखिका आचार्या नन्दिता शास्त्री 'चतुर्वेदी' वैदिक साहित्य की मर्मज्ञ विदुषी और धुरन्धर शास्त्रार्थी के रूप में विख्यात हैं। वैदिक सिद्धान्तों के निर्भ्रान्त ज्ञान और महर्षि दयानन्द की आर्ष दृष्टि के प्रति अगाध आस्था एवं दृढ़ निष्ठा वाली आचार्या नन्दिता शास्त्री अपराजेय शास्त्रार्थी मानी जाती हैं। विद्वज्जन वैदिक विमर्श में इनको वही महत्त्व देते हैं जो इतिहासकार अंग्रेजों के साथ युद्ध में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई को देते हैं।



PILGRIMS PUBLISHING
◆ Varanasi ◆
www.pilgrimsonlineshop.com
www.pilgrimspublishing.in

ISBN 978-93-5076-130-4

